साम्यवाद का बिगुल

(साम्यवादी साहित्य की उत्कृष्ट पुस्तक)

लेखक—

सर्व श्री सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, श्रीप्रकाश,
जयप्रकाश नारायण, दामोदर स्वरूप सेठ,
गोविन्द सहाय बी० काम।

प्रकाशक—

काशी पुस्तक भण्डार

प्रो० एस० बी० सिह एण्ड को०,
चौक, बनारस सिटी।

प्रथमबार १९३६ मूल्य १)

हिन्दी में युगान्तर उपस्थित करने वाली उच्चकोटि की

पुस्तकें—

देखिए हिन्दू स्कूल, बनारस के हेडमास्टर श्रीयुत पं० रामनारायण जी मिश्र की सम्मति इन पुस्तकों के विषय में क्या है—

"नारी धर्म शिक्षा"—ऊँची श्रेणी की पुस्तक है—नारी जीवन सम्बन्धी इसके लेख पढ़ने और मनन करने योग्य हैं।

"ब्रह्मचर्य की महिमा"—पुस्तक प्रत्येक विद्यार्थी को पढ़नी चाहिये—चरित्र-गठन सम्बन्धी इसमें बड़े महत्व की बातें हैं।

"कुत्सित-जीवन"—के रचयिता महात्मा गान्धी हैं—वे संसार के उन थोड़े से महापुरुषों में हैं कि जो कहते हैं वही करते हैं और जिनका आदर्श सदैव ऊँचा रहता है—इस पुस्तक में महात्माजी ने ब्रह्मचर्य सम्बन्धी उज्ज्वल विचार प्रकट किये हैं, यह पुस्तक प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी गृहस्थ के घर में होनी चाहिए।

१—"आश्रम गीतांजलि २—स्त्री संगीत गायन"—मैंने बड़े चाव और प्रेम से पढ़ी। इन पुस्तकों में दिये हुए भजन मनुष्य जीवन को ऊपर उठाते हैं और पढ़ने वाले के हृदय में उनके द्वारा आध्यात्मिक लहर उठने लगती है।

रामनारायण मिश्र

पता—एस० बी० सिंह एण्ड को०,
काशी-पुस्तक-भण्डार, चौक, बनारस सिटी।
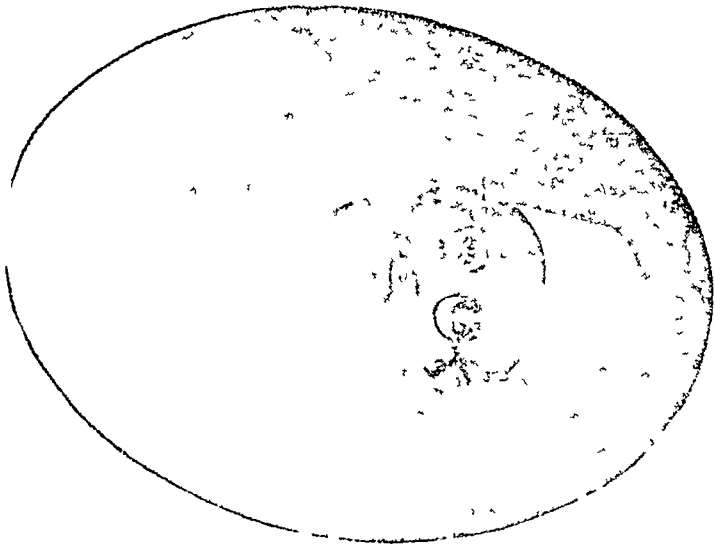
आचार्य नरेन्द्रदेव

बाबू सम्पूर्णानन्द

श्रीयुत श्रीप्रकाश।

आप संयुक्तप्रान्त के प्रसिद्ध कांग्रेस नेता, एकता के पुजारी, सरल प्रकृति उदार हृदय, स्वाभिमानी और कांग्रेस समाजवादी दल के समर्थक हैं।

विषय-सूची ।

प्रकाशकीय वक्तव्य

वर्तमान युग में संसार के समस्त सभ्य देशों में साम्यवाद की चर्चा चल रही है। संसार का शिक्षित समाज इस सिद्धान्त पर विशेष ध्यान के साथ मनन करने लगा है। परन्तु हिन्दी में इस विषय पर कोई ऐसी उपयोगी पुस्तक अब तक नहीं प्रकाशित हुई थी जो समाजवादी साहित्य पर प्रकाश डालती। पाठकों के सन्मुख आज इस सामयिक परमोपयोगी पुस्तक उपस्थित करते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। देश में कैसी जागृति की हवा बह रही है और देशोद्धार का शुभ समय कितना निकट है, उसका पता इस पुस्तक के पढ़ने से पाठकों को लग जायगा। इस पुस्तक में देश के बड़े २ दिग्गज विद्वानों ने अपने अमूल्य सिद्धातों की पुष्टि करते हुए देश को स्वातन्त्र्य संग्राम में सफल बनाने तथा श्रमजीवियो और कृषकों के दुःख-मोचन के उपाय स्पष्ट शब्दों में बतलाये हैं। आशा है कि हिन्दी-भाषा भाषी जनता इस पुस्तक के प्रचार में पूर्ण सहायक होगी।

मेरी प्रार्थना से द्रवित होकर श्री बाबू सम्पूर्णानन्द ने अपने नये पुराने लेखो तथा उचित परामर्श द्वारा इसके प्रकाशन में जो सहायता दी है उसके लिये मैं आपके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। अन्त में मै उन कृपालु लेखकों का भी अति कृतज्ञ हूँ कि जिनके अमूल्य लेखों ने इस पुस्तक को पूर्णाङ्ग बनाया है। शीघ्रता से पुस्तक का प्रकाशन होने से इस संस्करण में कुछ त्रुटियों का रह जाना अनिवार्य है। पाठकगण उचित परामर्श देंगे तो अगले संस्करण में उचित संशोधन हो जायगा।

—प्रकाशक।

साम्यवाद का बिगुल ।

समाजवादी समाज की कुछ विशेषताएं ।

लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द जी ।

यह एक विलक्षण सी बात है कि इस संबंध में तो बहुत से लेख और व्याख्यान देख सुन पड़ते हैं कि समाजवादियों का कांग्रेस से क्या संबंध हो और समाजवादी कार्य्यक्रम क्या हो परन्तु इस विषय पर बहुत कम विचार होता है कि आखिर समाजवाद का मूलतत्व क्या है ? समाजवादी समाज की क्या विशेषताएं होंगी । बिना इसको समझे समाजवादी कार्य्यक्रम को समझना कठिन ही नहीं असम्भव है और उसपर टीका टिप्पणी करना हवा से लड़ना है ।

आजकल उत्पादन के मुख्य साधन, जैसे मशीन, कारखाने, ज़मीन, कुछ व्यक्तियो की सम्पत्ति हैं जो स्वयं उत्पादन का काम नहीं करते । मै जानता हूँ कि कुछ कृषक अपने खेतो के मालिक हैं और कुछ लोग उद्योग धन्धो से जीविका चलाते हैं पर आजकल की सभ्यता और संस्कृति इन लोगो पर निर्भर नही है । साधारणतया किसान अपने खेत का स्वामी नही होता, वह लगान देकर खेती करने का अधिकार प्राप्त करता है । इसी प्रकार कारखाने के मज़दूर मशीनो के मालिक नहीं होते । यह तो साफ ही है कि प्रत्येक

व्यक्ति अपने भरणपोषण से अधिक पैदा कर लेता है, किसान यदि अधिक पैदा न करे तो लगान नहीं दे सकता। मजदूर यदि अधिक पैदा न करे तो कारख़ाने की सारी आय मजदूरों में ही ख़त्म हो जाय। यह भरणपोषण से अधिक जो पैदा किया जाता है यही जमीनदार की आमदनी और कारख़ानेदार का मुनाफ़ा है। यह इन लोगों की बेपरिश्रम की, अनर्जित, आय है। इनकी सर्वथा यह कोशिश रहती है कि असली पैदा करने वालों के पास कम से कम छोड़कर अपने हाथ में अधिक से अधिक खींच लें। इसका परिणाम एक तो यह होता है कि इन दो वर्गों में बराबर तनातनी बनी रहती है, दूसरे थोड़े से आदमी जो स्वयं परिश्रम नहीं करते सुखी, सम्पन्न, सुशिक्षित रहते हैं और समाज का बहुत बड़ा अंश जो परिश्रम करता है दुःखी, दरिद्र, अशिक्षित बना रहता है। यह बात सारे समाज के लिये अहितकर है।

समाजवादी समाज में ऐसा न होगा। उत्पादन के साधन कुछ व्यक्तियों के नहीं वरन् सारे समाज की सम्पत्ति होंगे। सारा समाज जमीन, मशीन आदि का स्वामी होगा, उत्पादन का नियंत्रण करेगा अर्थात् अपने प्रतिनिधियो द्वारा करायेगा और उत्पन्न वस्तुओं का यथोचित उपभोग करेगा। यह पहिला मूल तत्व है और पहिला ही क्यों, सब से बड़ा मूलतत्व है। इसी प्रकार वितरण और विनिमय के मुख्य साधन अर्थात् रेल, जहाज़, बंक आदि भी समाज की सम्पत्ति होंगे।

इससे एक और बात निकलती है। आजकल उत्पादन मुनाफ़े के लिये होता है, उस समय उपयोग के लिये होगा। उदाहरण लीजिये। बम्बई, अहमदाबाद आदि में कपड़े की बहुत सी मिलें खुली हैं। क्यों? यह बात तो है नहीं कि इनके मालिक समाज के

निर्धनों को नग्नावस्था से द्रवित हो उठे हैं प्रत्युत इस लिये कि इस व्यवसाय से रुपया मिलता है। कल यदि मुनाफा कम हो जाय तो कपड़ा कम बनावेंगे चाहे लोग भले ही नंगे रहे। यदि कोई लड़ाई छिड़ जाय और बाहर से कपड़ा आना बन्द हो जाय तो फौरन् दाम बढ़ा देंगे, चाहे नंगों की जो दशा हो। यदि किसी और व्यवसाय में अधिक मुनाफा होगा तो रुपये वाले उसी में रुपया लगावेंगे, चाहे जरूरी चीजें रह जायँ। पर जब समाज के हाथ में उत्पादन आ जायगा तब यह बात जाती रहेगी। समाज अपने आप से तो मुनाफा करेगा नहीं, न अपने आपको नंगा भूखा रक्खेगा। जिन जिन वस्तुओं की जितनी जितनी आवश्यकता होगी वह उतनी उतनी पैदा की जायंगी और मुनाफे की लालच में उनका दाम घटता बढ़ता न रहेगा। सच बात तो यह है कि शुद्ध समाजवादी समाज में दाम का प्रश्न ही न आना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य शुद्ध लोक-संग्रह भाव से शक्ति भर काम करे और अपनी आवश्यकता भर समाज के भंडार से जो चाहे लेले। "प्रत्येक व्यक्ति से उसकी योग्यता के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार"—समाजवाद का एक प्रधान सूत्र है। पर यह चरमावस्था की बात है। निकट भविष्य मे क्रय विक्रय रहेगा। पर चूंकि समाज ही सामूहिक रूप से पैदा करने वाला और बेचनेवाला होगा और वैयक्तिक रूप से ख़रीदने वाला होगा इसलिये जो कुछ नियंत्रण करेगा वह अपने हित के लिये ही करेगा। आज कोई खेती करता है, कोई कपड़े जूते तैयार करता है, कोई रेल चलाता है, कोई स्कूल खोलता है, कोई थिएटर सिनेमा खोलता है। सभी समाज की कोई न कोई आवश्यकता पूरी कर रहे है पर अलग अलग, बिना दूसरी आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिये और केवल अपने लाभ के लिये। उस समय समाज

...। अपने भोजन, वस्त्र, शिक्षण, रक्षण, आमोदप्रमोद सभी का प्रबंध करना होगा। वह अपनी शक्ति और आवश्यकता तौलकर सबका यथोचित प्रबंध करेगा।

एक और बात भी पहिली बात से, जिसे हमने मूल तत्व कहा है, निकलती है। आज एक श्रेणी उन लोगों की है जो ज़मीन के मालिक हैं, दूसरी श्रेणी उनकी है जो लगान देकर खेती करते हैं और अपने पास जो कुछ थोड़ा बहुत रख पायें उसे रखकर शेष ज़मीनदार की नज़र कर देते हैं। एक श्रेणी उन लोगों की है जो कल कारखानों के मालिक है, दूसरी श्रेणी मज़दूरों की है जो अपने गाढ़े पसीने की कमाई मालिकों के चरणों में अर्पित करने के लिये ही बनाये गये है। जब सारा समाज उत्पादन के साधनों का स्वामी हो जायगा तो न ज़मींदार रहेगा न मिलमालिक। बड़े से बड़े अहलकार की हैसियत भी श्रमिक की होगी। उस समय यह नित्य का वर्गसंघर्ष समाप्त हो जायगा क्योंकि लड़ने वाली सेनाएं ही मिट जायंगी। केवल एक वर्ग—परिश्रम करनेवालों का—रह जायगा, चाहे अपनी योग्यता और समाज की आवश्यकता के अनुसार परिश्रम खेत में किया जाय या कारखाने में, दफ्तर में किया जाय या पाठशाला में। यहाँ भी एक बात ध्यान देने की है। चरमावस्था में तो उसी सिद्धान्त के अनुसार काम होना चाहिये; सब अपनी योग्यतानुसार काम करें और आवश्यकतानुसार लें। इसमें तो पारिश्रमिक, वेतन, पुरस्कार के लिये कोई स्थान ही नहीं है। पर निकट भविष्य में तो पारिश्रमिक का नियम रखना पड़ेगा और भिन्न भिन्न व्यक्तियों के पारिश्रमिक में भेद भी होगा। हाँ, एक ...त अवश्य है। चूंकि सभी लोगो की कुछ आवश्यकताएं—खाना कपड़ा आदि—प्रायः एक सी ही हैं इसलिये पारिश्रमिकों ...ज जैसा भेद, जबकि वाइसराय २५,०००) मासिक पाकर भी

त्यागी कहलाता है और चपरासी के लिये १२) भी बहुत समझा जाता है, न होगा और किसी को भी एक ऐसे निर्दिष्ट रकम से कम न मिलेगा जो सुचारु भरण पोषण के लिये पर्य्याप्त हो। इस लिये वर्गों के टूटने पर धनिक निर्धन श्रेणियो के पुनः बन जाने की कम ही सम्भावना है।

लोग प्रायः दो प्रश्न बहुत पूछा करते है, क्या समाजवाद सबको बराबर कर देना चाहता है? समाजवादी समाज मे निजी सम्पत्ति रहेगी या नहीं?

पहिले प्रश्न का उत्तर यदि एक शब्द में देना हो तो मैं कहूंगा कि 'नहीं'। समाजवाद इस विषय मे प्रकृति से लड़ना नहीं चाहता। समाजवादी समाज की चरमावस्था मे भी सम्भवतः कोई जन्मनाद्दुर्बल और कोई बलवान, कोई प्रतिभाशाली और कोई दुर्बुद्धि पैदा होगा। काम करने की समता सबकी पृथक पृथक् होगी। आवश्यकताएं भी पृथक् पृथक् होगी। यह भी मैने बतलाया है कि बीच के काल में पारिश्रमिक तक में भेद होगा। पर हां, समाजवादी सबको बराबर अवसर देना चाहते है। आज किसी जाति, वर्ग या कुल विशेष में जन्म लेने से ही किसी को उन्नति करने का बहुत सा अवसर मिल जाता है और किसी का रास्ता रुक जाता है। ऐसा न होना चाहिये। सब को मौका बराबर मिले, जो आगे बढ़ सके वह बढ़ जाय। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आगे बढ़ने का वास्तविक अर्थ उस समय होगा समाज की अधिक सेवा करना।

दूसरे प्रश्न का उत्तर है—'हां'। चरमावस्था में तो सम्पत्ति का कोई उपयोग ही नही होगा पर बीच की अवस्था मे निजी सम्पत्ति रहेगी। उसपर दो नियंत्रण रहेगे। इनमे से एक तो किसी न किसी रूप मे आज भी है अर्थात् परिसीमन। आजकल राज आम-

दनी पर इनकम टैक्स और बड़ी आमदनियों पर सूपरटैक्स लगाता है। बहुत जगह मरने के बाद उत्तराधिकारियों को एक निर्दिष्ट अंश राजकोष में देना पड़ता है। समाजवादी समाज में सम्भवतः बन्धन और कड़े होंगे ताकि बड़ी सम्पत्तियां उत्तराधिकारियों के हाथ में न आवें। पर सब से बड़ा और मौलिक नियंत्रण यह होगा कि सम्पत्ति पूंजी न बनने पावेगी। सम्पत्ति बुरी नहीं होती, पूंजी बुरी होती है क्योंकि पूंजी के द्वारा ही उत्पादन के साधनों पर कब्जा करके मनुष्य मनुष्य को आर्थिक दास बनाता है। यदि रुपया हो पर वह किसी व्यवसाय में न लगाया जा सके, अर्थात् पूंजी बनकर अपनी वृद्धि न कर सके, तो वह विशेष हानिकर नहीं हो सकता। समाजवादी समाज में सब व्यवसाय समाज के हाथ मे होंगे, निजी व्यवसाय में पूंजी लगाने की अनुमति ही न होगी। घर, कपड़ा, पुस्तकें, मोटर, यह व्यवहार की सम्पत्ति रह सकती है। यह प्रायः निश्चित है कि ऐसी दशा में बहुत सा धन संग्रह करने का लोभ भी किसी को न होगा। धन तो इसी लिये इकट्ठा किया जाता है कि पूंजी बनकर अपनी संतति बढ़ावे।

एक प्रश्न कभी कभी और किया जाता है। जब धन संग्रह करने का अवसर ही न रहेगा तो लोगों को काम करने के लिये प्रोत्साहन क्या होगा? जो लोग ऐसा प्रश्न करते हैं वह मनुष्य के स्वभाव की महत्ता से अनभिज्ञ हैं। कुसंस्कार और कुशिक्षा ने मनुष्य को भले ही लोभी और स्वार्थी बना दिया हो पर वह लोक संग्रह भाव से काम करने के योग्य है। भूत सेवा उसके लिये कम आकर्षक लक्ष्य नहीं है। बड़े बड़े कवियों की कृतियां केवल स्वान्तः सुखाय लिखी गयी हैं। धर्म्मप्रणेता, साधु, वैज्ञानिक, लक्ष्मी का बराबर तिरस्कार करते रहे है। अच्छे आदमियों को तो कर्तव्य

बुद्धि, निष्काम बुद्धि, से ही काम करना अच्छा लगता है। यह भी नहीं है कि यह असाधारण व्यक्तियों की बात हो। अपने आदर्शों के नाम पर हजारों ने जेलों के संकट झेले हैं, सम्पत्ति बरबाद कर दी है, प्राण दे दिये हैं। अतः समाज सेवा भाव में प्रोत्साहन देने की पर्य्याप्त शक्ति भरी पड़ी है।

एक बात की ओर और संकेत करूंगा। आज सारी पृथ्वी साम्राज्यशाही के आक्रमण से जर्जर हो रही है। उत्पादन होता है मुनाफे के लिये और व्यक्तियों के हाथ में व्यवसाय हैं। जिन देशों से कच्चा माल लेने में मुनाफा हो, जिनमे बना माल बेचने मे मुनाफा हो, जिनके व्यवसायों में अपना रुपया लगाने मे मुनाफा हो उन पर किसी न किसी प्रकार नियन्त्रण करना ही साम्राज्यशाही है। यदि उत्पादन उपयोग के लिये हो और प्रत्येक देश में समाज के हाथ मे उत्पादन के साधन हों तो यह होड़ बन्द हो जाय और अन्तरराष्ट्रीय भ्रातृभाव की स्थापना हो।

इस बहुत ही संक्षिप्त दिग्दर्शन से इस बात का कुछ अनुमान हो सकता है कि समाजवादी कैसा समाज स्थापित करना चाहते हैं। यदि आजकल के विषमतामय वातावरण को, जो सौहार्द, विश्वास, धैर्य—थोड़े मे मनुष्यत्व को, कुण्ठित कर देता है, दूर करना है तो सिवाय समाजवाद के और कोई मार्ग देख नहीं पड़ता। पर समाजवाद का मार्ग क्रान्तिमय है। सुधारों के द्वारा हम समाजवादी समाज को स्थापित नहीं कर सकते।

कांग्रेस समाजवादी दल।

(लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द जी)

इस परिस्थिति में कांग्रेस-समाजवादी दल का उदय होना देश के लिये बड़ी ही श्रेयस्कर बात है। इस दल के सदस्य भी कांग्रेस के सदस्य हैं। उनमें से बहुतों ने पिछले पन्द्रह वर्षों में बराबर कांग्रेस का साथ दिया है और दूसरे लोगों के बराबर ही सरकार के हाथों देश सेवा का पुरस्कार पाया है। यह लोग अब भी कांग्रेस के वैसे ही भक्त और उसकी मर्यादा और गौरव की रक्षा करने के लिये वैसे ही तत्पर हैं। आवश्यकता के समय यह भी कांग्रेस की पूर्ववत् ही सेवा करेंगे। और यदि वह देश के लिये फिर कभी युद्ध छेड़ेगी तो उसमें दूसरों के साथ कन्धे से कन्धा लगा कर बराबर लड़ेंगे। इस सम्बन्ध में किसी को सन्देह नहीं होना चाहिये।

यहाँ समाजवाद की लम्बी व्याख्या करने की जरूरत नहीं है, पर दो एक बातों का दिग्दर्शन कराना आवश्यक है। समाजवादी न केवल विदेशी सरकार को दूर करना चाहता है, वरन् समाज आर्थिक स्वरूप में क्रांति करना चाहता है। आज एक तरफ वह लोग हैं जिनके पास करोड़ो रुपये जमा हैं, पर यह रुपये कहाँ से आते हैं? रुपये क्या आकाश से बरसते हैं? मजदूर एंड़ी-चोटी का पसीना एक करता है पर बीमार हुआ, बूढ़ा हुआ तो निकाला गया। चाहे मुनाफा कुछ हो, पर उसकी मजदूरी वही रहती है। अभी आपने अहमदाबाद का झगड़ा सुना होगा। पहले सरकार

का कानून ऐसा था कि कपड़े के तथा अन्य कारखानों में काम करने वालों से ६० घन्टा हफ्ता काम लिया जा सकता था। अन्य सभ्य देशों मे प्राय: ४८ घण्टे का नियम है। अब शर्माते शर्माते सरकार ने यहां यह कायदा बनाया है कि ५४ घण्टे से ज्यादा काम लेना मजदूरों के साथ हैवानी बर्ताव करना है। सारे भारत के लिये यही कानून लागू होगा। इसीलिये किसी पूँजी वाले के मुनाफे में घाटा न होगा पर अहमदाबाद के मिलमालिक मजदूरी घटाने जा रहे हैं। यही दशा सब जगह है। आजकल जमींदार क्या करता है? अगर जमींदार न रहे तो किसी का क्या बिगड़ जावेगा! पर वह बैठा बैठा मुफ्त में किसान की गाढ़ी कमाई में हिस्सा लेता है। खुली लगान तो लेता ही है, छिपी लगान—हर वक्त—भी लेता है, हरी, बेगारी, नजराना, यह सब लेता है। यह सब खुली लूट है। एक ओर वह लोग हैं जिनके महलों में एक कुटुम्ब क्या, सौ कुटुम्ब समा जावे, दूसरी ओर वह लोग हैं जो टूटी झोपड़ियों में या सड़क की पटरियों पर माघ-पूस की रात बिता देते हैं। एक ओर वह लोग है जिनके पास इतना रुपया है कि वह उसे खर्च करना नहीं जानते, दूसरी ओर वह लोग हैं जो दूसरे-तीसरे वक्त आधा पेट अन्न पाते हैं और एक दूसरे की देह से सिमट कर जाड़ा काटते हैं। किसी के लड़के को, चाहे वह जन्म से ही मूर्ख हो, पढ़ाने मे हजारों रुपये खर्च होते हैं, किसी का तेज और बुद्धिमान लड़का वजीफे और फीस के लिये इधर उधर दौड़ कर, हाय करके बैठ रहता है। अमीर के लिये धर्म दूसरा है, कानून दूसरा है, गरीब के लिये धर्म और कानून की दूसरी ही सूरत हो जाती है। समाजवाद इस बात को बदलना चाहता है। उसका सिद्धान्त है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्ति और योग्यता भर परिश्रम करे, कोई बैठा बैठा हरामखोरी न करे, और सबको

जरूरत के अनुसार मिले। समाजवादी जमींदारी प्रथा को उठा देगा, कल-कारखानों को मिल मालिकों के हाथ से लेकर राष्ट्र की सम्पत्ति बनादेगा, ताकि मिलों के, बंकों के, रेलवे लाइनों के मुनाफे में सबका हिस्सा हो। समाजवादी गरीब अमीर का भेद मिटाना चाहता है। वह आपसे कहता है कि हाथ पर हाथ रखकर कर्म और ईश्वर के नाम पर मत रोइये। पुरुषार्थ से काम लीजिये। समाज की यह अवस्था जिसमें वायसराय को २५०००) मासिक मिले और एक चपरासी, एक पुलिस कांस्टेबुल को १२) १३) मासिक मिले, शर्मनाक है। वायसराय को भी एक पत्नी होती हैं, चपरासी को भी। बच्चे शायद चपरासी के कुछ ज्यादा ही होगे। मेहनत भी वह कम नहीं करता। हम मानते हैं कि सबको जरूरत एकसी नहीं होती, पर दो आदमी की जरूरतों में २५०००) और १०) का फर्क नहीं हो सकता। समाजवादी चाहते हैं कि हम जिस स्वराज्य के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर कर रहे हैं वह भारत की इस कोटानुकोटि जनता का स्वराज्य हो जिसमें यह लोग आदमी की तरह रह सकें।

कांग्रेस और गरीब

इसके उत्तर में कुछ लोग यह कहते हैं कि कांग्रेस तो खुदही गरीबों का स्वराज्य चाहती है। महात्मा जी तथा अन्य नेताओ ने बार-बार ऐसा कहा है कि हम मजदूरों और कृषकों का स्वराज्य चाहते हैं। यदि हमारे बड़े नेताओ की वस्तुतः यही इच्छा है तो वे हमको आशीर्वाद देंगे और हमको जल्दी सफलता होगी पर सच तो यह है कि इस समय कांग्रेस पर रुपये वालों का बड़ा जोर है। वह जब चाहते हैं तब आन्दोलन छिड़ जाता है, जब चाहते हैं तब रुक जाता है। उनके कुकर्मों को जानते हुए भी कांग्रेस उनकी निन्दा नहीं कर सकती। स्वराज्य के नाम पर लोगों को लड़ाने की

कोशिश तो की जाती है पर यह साफ साफ नहीं बतलाया जाता कि स्वराज्य हो जाने पर इन गरीबों को क्या मिलेगा। आज को इनको अंग्रेज और हिन्दुस्तानी धनिक मिलकर चूसते हैं, कल अकेले हिन्दुस्तानी मिलकर चूसेंगे। पर, इस स्वराज्य से बेचारे गरीब को क्या सुख मिलेगा! वह उसके लिये क्यों मरे कटे। हम समाजवादी स्पष्ट रूप से बतला देते है कि स्वराज्य में क्या होगा, मिल-मालिको, पूंजी-पतियों, सरकारी अहल्कारो और जमीन्दारों का बल किस प्रकार खत्म हो जावेगा। जो आदमी एक अदना चपरासी, एक चार पैसे वाले महाजन, एक छोटे से जमीन्दार के सामने सरकार, हुजूर, अन्नदाता, मालिक कहकर नाक रगड़ता है, हम उसको आदमी बनाना चाहते हैं। और इसकी तय्यारी भी अभी से करते हैं। हम मजदूरों और किसानों से कहते हैं कि संघटित हो जाओ और मजदूर सभा और किसान्न सभा बनाओ। संघ मे बड़ी शक्ति है। यदि अपने चूसने और सताने वालो से अकेले-अकेले बात करोगे तो हारते ही रहोगे पर; यदि संघटित होकर, मिलकर, बात करोगे तो सब नहीं पर, अपनी कुछ मांगें जरूर उनसे पूरी करा लोगे। पूरा सुख तो स्वराज्य के बिना नहीं ही मिल सकता।

साम्यवाद की ओर

(लेखक—श्रीयुत श्रीप्रकाश जी)

अब यह मुमकिन नहीं है कि हम इस हालत को बरदास्त कर सकें कि एक तरफ जरूरत से ज्यादा धन हो, और दूसरी तरफ बेहद गरीबी हो, चन्द लोगों के पास बेहद ताकत हो, और बाकी लोग गुलामी में पड़े हों। हम साफ साफ यह चाहते हैं कि दुनियाँ में काम और दाम का मुनासिब बँटवारा हो, समाज-का सङ्गठन आजादी और मुहब्बत के उसूल पर किया जाय। सचमुच हम सब ऐसे ही समाज को कायम करने की कोशिश में लगे हैं, और कांग्रेस समाजवादी दल का कायम होना, और उसका कांग्रेस में पहले ही वर्ष इतना जबरदस्त असर पैदा कर लेना, इस बात का सुबूत है कि हम किस तरफ जाना चाहते हैं। जो हमारे लाखों गरीब भाई और बहिन आज अपना सर्वस्व कांग्रेस के नाम पर निछावर कर रहे हैं, वे ऐसा इस वास्ते नहीं कर रहे हैं कि मुट्ठी भर आदमियों के गैर-जिम्मेदार हाथों में दुनियाँ की सारी हुकूमत रहे और करोड़ो उनके गुलाम बने रहे। उन लोगों को भी याद रखना चाहिये जो आज अपने भाइयों से ज्यादा अच्छी हालत में हैं, और जो सारी इज्जत और हुकूमत, सारी दौलत और आराम, अपने ही हाथों में रखे हुए हैं, गो वे इनको छोड़ना नहीं चाहते, पर वास्तव मे जिन चीजों का उन्हें लालच है वे ही खतरे में पड़ जाती हैं, अगर उनके चारों तरफ के रहने वाले गलाज़त और गरीबी में पड़े

हुए हों, और जिस्मानी आसाइश और दिमागी इल्म से जो रोशनी मिलती है उससे वे महरूम हों। उसका असर उनके ऊपर पड़ता ही है, और अगर पड़ोसी दुखी और गन्दा है तो बीमारी और मौत उनकी दीवारों के भीतर भी आही जायगी, चाहे इन्हे दूर रखने के लिये कितनी ही कोशिश क्यों न की जाय।

गवर्नमेन्ट और ज़मींदार

हर एक गवर्नमेंट जरूर ही यह पसन्द करती है कि जितना वह टिकस लगावे प्रजा वहुत खुशी के साथ उसे दे दे। जिस बात मे जितनी वह मदद मांगे उसे मिल जाय। वह जो कुछ चाहे करे, कोई कुछ न बोले। बीमारी से, भूख से, ग़रीबी से चाहे कितनी ही तकलीफ हो, प्रजा चुपचाप बरदास्त करे और जरूरत पड़े तो मर भी जाय, पर ज़रा भी शिकायत न करे। क्या हम और आप ऐसी स्थिति से खुश हो सकते हैं? क्या हम उन अपने भाइयों को ऐसी लाचारी और विवशता की हालत मे छोड़ सकते हैं जिनकी मेहनत और कुरबानी की वजह से आज दुनियाँ भर को खाना और कपड़ा मिलता है, और हमे वे आसाइशे मिली हैं जो सभ्यता की सूचक समझी जाती हैं? पर भड़कने वालों से हमें ज़रूर शिकायत है। ज़मींदारो की ही एक मिसाल ले लीजिए! हम से भड़क कर भड़काने वालो की गोद में जाने से, कर्ज़ लेने न लेने के नए क़ानूनो के आडम्बर से उन्हे क्या फायदा मिल रहा है या मिल सकता है? सम्भव है कि इसका यही नतीजा हो कि जमींदारों और महाजनो में परस्पर वैमनस्य ही पैदा हो, जिससे दोनों का ही नुकसान हो और गवर्नमेंट की ज़मींदारी और महाजनी साथ ही साथ खूब मज़बूत होती जाय। सारा आक्रमण एकतर्फा ग़ैर-सरकारी पेशों के ही विरुद्ध होता है। गवर्नमेंट इसको तो मान लेती

है कि ज़मींदार और महाजन लोगों का खून चूसते हैं, और बिना कुछ किये धन कमाते हैं। लेकिन सारे सरकारी मुलाजिम मुल्क के बड़े आत्मत्यागी लोकोपकारी सेवक समझे जाते हैं जो लगातार मेहनत करते हैं और उसके बदले में कुछ नहीं पाते, यद्यपि वास्तव मे नाम के वास्ते ही उनमें से कितनों का काम रहता है, और जब बड़ी से बड़ी भी ग़लती कर बैठते हैं तो उसका बुरा नतीजा ग़ैर-सरकारी आदमियों को ही भुगतना पड़ता है, और कितनों को इतनी बड़ी बड़ी तनख्वाहें मिलती हैं और उनका इतना बड़ा पद समझा जाता है, कि अपने ज़िलों के अधिकतम धनिकों और विशेषाधिकार प्राप्त किये हुए लोगों में उनकी गिनती है।

मैं तो यही नहीं समझ पारहा हूँ कि इस समय की अवस्था में ज़मींदारी प्रथा को बनाये रखनेमें जमींदारों का ही क्या फायदा है?

किसी से दुश्मनी नही

हम किसी गरोह या किसी कौम से नहीं लड़ रहे हैं। हम जिन्दगी के एक खराब तरीके से लड़ रहे हैं। हम किसी व्यक्ति या किसी गरोह के दुश्मन नहीं हैं, किसी का अहित नहीं चाहते, सब की उचित भलाई और सेवा करने की कोशिश कर रहे हैं।

साम्यवाद में ही सबका सच्चा स्वार्थ है।

[लेखक—श्री श्रीप्रकाश]

संसार में सभी प्राणी अपने हित की रक्षा के लिये यथाशक्ति और यथाबुद्धि प्रयत्न करते हैं। मनुष्य भी ऐसा ही करता है। वह एकाकी नहीं रह सकता। वह छोटे से कुल या गरोह से भी सन्तुष्ट नहीं होता। उसने बड़ा वृहत् संसारव्यापी संघटन अपने समाज के लिये करना चाहा है। वह इस संघटन को टूटने नहीं देना चाहता। उसकी इच्छा है कि यह दिन प्रतिदिन बलवान होता जाय। जितने कायदे कानून बनते हैं सब इसी वास्ते बनते हैं कि समाज का संघटन स्थायी रहे। विचारवान लोग नये नये प्रस्ताव इस उद्देश्य से किया करते है कि उसकी त्रुटियां दूर हों और उसे स्थायी रखने में सहायता मिले। दोषयुक्त कोई भी वस्तु बहुत कालतक नहीं रह सकती। दोष दूर करते रहना सबका प्रधान कर्त्तव्य है अगर वह अमरत्व को प्राप्त करना चाहता है। व्यक्तिगत अमरत्व की अभिलाषा अनुभव से असम्भव सिद्ध हुई। समाज के ही अमरत्व से व्यक्ति को सन्तोष करना होगा। जब हम देखते हैं कि समाज-संघटन दोषयुक्त है, उसका मूल सिद्धान्त ठीक नही है, तो हमें भय होता है कि समाज

का ही कहीं लोप न हो जाय। गलत या सही इस समय के समाज व्यूहन को कितने ही लोग बहुत ही भयावह मान रहे हैं। उनको आशंका है कि यह बहुत दिन तक टिक नहीं सकता। उसमें वे इतने दोष देख रहे हैं कि उन्हें डर है कि परस्पर के झगड़ों के कारण समाज टूटकर तहस नहस हो जायगा और जिसको प्राप्त करने मे सहस्रों वर्ष का कठोर परिश्रम लगा है वह सर्वथा नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। मनुष्य समाज को सुचारु रूप से संघटित रखना जिससे मनुष्य का दिन प्रतिदिन अधिकाधिक विकास होता जाय, यह सब की ही अभिलाषा है। इसकी पूर्ति के लिये और वर्तमान समय की स्थिति से उत्पन्न हुई जो शंकाएँ हैं उन्हें दूर करने के लिये साम्यवाद की विचार धारा जोरों से चारो ओर फैल रही है।

साम्यवाद के नाम से चौंकने की कोई जरूरत नहीं है। हम साम्यवाद की यहां परिभाषा नहीं कर सकते, क्योंकि नाना प्रकार के व्यक्ति अपने को साम्यवादी कहते हैं और नाना प्रकार की काररवाइयां साम्यवाद के अनुकूल बतलायी जाती हैं। साम्यवाद के सम्बन्ध में बात करने में एक और कठिनाई है। कितने ही लोगों का ख्याल है कि साम्यवाद का अर्थ गरीबी है और साम्यवादी का गरीब होना आवश्यक है। (यहां 'गरीब' उसी अर्थ में प्रयोग हुआ है जिसमें साधारणतः बोलचाल की भाषा में वह प्रयोग किया जाता है, अर्थात् ऐसा पुरुष जो अन्न वस्त्र के कष्ट में हो) यदि कोई ऐसा पुरुष अपने को साम्यवादी कहे जो साधारणतः खाने पीने से खुश हो तो वह मक्कार समझा जाता है। और यदि कोई इत्तिफाक से गरीब आदमी अपने को साम्यवादी बतलावे तो उसका यह कहकर मजाक उड़ाया जाता है कि अवश्य ही वह मुफ्त में दूसरों का धन चाहता है। मैं साम्यवाद की गूढ़ तह में न

घुसना चाहता हूँ और न घुसने की योग्यता रखता हूँ। उसी सम्बन्ध में भिन्न भिन्न विचारों पर विद्वत्तापूर्ण विवेचना भी मैं नहीं कर रहा हूँ। मैं तो राह चलतो के लिए लिख रहा हूँ, उनके ही भ्रमों को दूर करने का यत्न कर रहा हूँ और यह दिखलाना चाहता हूँ कि साम्यवाद में ही उनके हितों की वास्तविक रक्षा होती है। उनका जो यह ख्याल है कि साम्यवाद में संसार के सारे धन का सब मनुष्यों में बराबर बटवारा कर दिया जायगा वह गलत है। इसी से वे सब भ्रम होते हैं जिनका निर्देश ऊपर किया गया है और व्यक्तिगत साम्यवादी की आर्थिक स्थिति को देखकर उसकी आलोचना की जाती है। मोटे तौर से साम्यवाद—वास्तव मे इसे समाजवाद कहना चाहिये पर साम्यवाद शब्द की ही इतनी प्राणप्रतिष्ठा हो गयी है कि इसको बदलना सम्भव नहीं है—मनुष्य समाज के संघटन के सम्बन्ध की एक विचार शैली है जिसका मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति भर कार्य करना चाहिये और उसकी आवश्यकता भर उसे मिलना चाहिये। साम्यवादी का ख्याल है कि यदि इस सिद्धान्त पर काम हो तो समाज का संघटन सुन्दर, सुदृढ़ और सदा स्थायी हो सकता है।

इस सिद्धान्त में पाठक देखेंगे कि बराबरी पर जोर नहीं दिया जाता, क्योंकि यह मानी हुई बात है कि सब लोग बराबर नही है। साथ ही यदि पांचों उँगलियाँ बराबर नहीं हैं तो एक उँगली और दूसरी उँगली मे गज दो गज की लम्बाई चौड़ाई का फर्क भी नहीं है। सबको ही अपने अपने स्थान पर अपनी अपनी शक्ति के अनुसार काम करना पड़ता है और सबकी ही उचित आवश्यकताएँ पूरी की जाती हैं। इस समय मनुष्य समाज के विकास ने एक गलत रूप धारण कर लिया है जिसके कारण मनुष्य और मनुष्य मे बहुत बड़ा भेद हो गया है। धन बहुत थोड़े से हाथों में मर्यादित

होगया है। धन को ही सारी शक्ति और सारा सम्मान मिल गया है। धन ही सब कुछ खरीद सकता है और धन द्वारा खरीदने की चीजें भी बहुत सी तैयार हो गई हैं। ऐसी अवस्था में चन्द लोगों के हाथ में बाकी सब भाइयों के ऊपर अनन्याधिकार आगया है। प्रकृति दोष से अधिकार का सदुपयोग कम होता है और दुरुपयोग ही अधिक होता है। भीषण स्थिति पैदा होगई है। भेदभाव सबसे बड़ा दोष है, यही ईर्ष्या, द्वेष का माता पिता है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर छहों रिपुओं का बीज इसमें है, जो मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को नष्ट-भ्रष्ट कर सकते हैं और करते रहते हैं। भेद ही मिटाने से ये दोष मिट सकते हैं। साम्यवाद इस घातक भेद को मिटाना चाहता है। वह सबको बराबर नहीं मानता। इसी वास्ते कहता है, अपनी शक्ति भर सबको काम करना चाहिये। इसका मतलब ही है कि भिन्न भिन्न लोगों की शक्ति में अन्तर है। और सब लोग एक ही प्रकार का और एक ही परिमाण का काम नहीं कर सकते। वह सबको दाम भी बराबर नहीं देता। वह सबको कहता है कि अपनी आवश्यकतानुसार ले लो। भिन्न भिन्न लोगों की आवश्तकताएँ भिन्न भिन्न होती हैं। छोटा बच्चा कुछ काम नहीं करता, खाता बहुत है। दिक भी बहुत करता है। वयस्क काम बहुत कर सकते हैं, खाना भी कम खाते हैं। साम्यवाद कहता है अपनी शक्ति भर काम करो। अपने आवश्यकतानुसार ले लो। यह बच्चों, वयस्कों और वृद्धों सबकी पूरी पूरी और उपयुक्त व्यवस्था करता है।

लोग हँसकर कहेंगे—संसार के सब संकटों को मिटाने का क्या ही सुन्दर और सरल नुस्खा है। साथ ही वे गम्भीर भाव से पूछेंगे—क्या इसके लिखने वालो ने इसपर भी ध्यान दिया है कि मनुष्य किन वासनाओं से प्रेरित होकर काम करता है? उन वास-

नाओ की तृप्ति के लिये, कार्य करने वाले के हृदय के आप्यायन के लिये भी कोई उपाय सोचा गया है। आधुनिक संसार मे धन का ऐसा प्रबल प्रताप है कि साधारणतः लोगों ने यह सोच रखा है कि धन का लालच ही सब कामो को कराता है और अगर यह जीवन से निकाल दिया जाय तो कोई भी कुछ काम न करेगा। मनुष्य अपने काम का अपनी आवश्यकता से अधिक दाम चाहता है और जैसे जैसे अधिक दाम मिलता जाता है वैसे वैसे उसकी बुद्धि की स्फूर्ति बढ़ती जाती है और वह नये आविष्कारो से समाज की उन्नति मे सहायता पहुँचाता है। इस कारण यथाशक्ति काम और यथावश्यकता दाम का सिद्धान्त नहीं चल सकता। पर यदि विचार कर देखा जाय तो इन शङ्काओ को करने वाले भी इस बात का अवश्य अनुभव करेगे कि शायद ही कोई काम जो वास्तव मे लोकहित का हुआ होगा, धन के लालच से किया गया है। सुन्दर साहित्य, श्रेष्ठ कला, वैज्ञानिक आविष्कार सब प्रेम की प्रेरणा से हुए है। धन के लालच से इन्हें किसी ने नहीं किया। अधिकतर तो लोक-हितैषी दरिद्र रहे है और इनमे से जो धनी पैदा भी हुए वे अपने को स्वयं दरिद्र बनाकर ही लोकहित कर पाये। धन के लालच से जो काम हुए है वे तो समाज के घातक रहे है, समाज के सहायक नहीं। धन के लालच से व्यापारी जुआ-चोरी, कानूनी कलाबाजी, निरीह और निर्दोष स्त्री-पुरुषों पर पाशविक आघात ही हुआ है। इसमे समाज की उन्नति कहाँ?

साम्यवाद इस अत्याचार को बन्द करता है और ऐसे काम को ही दुनियाँ से हटा देता है जिसमे धन के लालच से मनुष्य मनुष्य को सताता है। वह इस दयनीय दृश्य को भी बन्द करना चाहता है जिससे उचित भोजन, वस्त्र, गृह से बंचित लोग अपना जीवन कला, साहित्य या विज्ञान की सेवा में व्यतीत कर रहे हैं।

वह इस वीभत्सता को भी दूर करना चाहता है कि धन के कारण किसी को बहुत अधिक मिले और अधिकतर लोगों को गरीबी के कारण कुछ न मिले। कुछ को आराम से ही फुर्सत न मिले और कितने ही काम में इतने पिसे रहे कि उन्हें भोजन और निद्रा के लिये भी पूरा अवसर न मिले। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि वर्तमान बृहत् भेदभाव बना रहा तो मनुष्य समाज को रोष और असन्तोष, द्वेष और घृणा से उत्पन्न ऐसी हिंसामय क्रान्ति का सामना करना पड़ेगा जिसमें सम्भव है कि वह पूरे तौर से नष्ट हो जाय। साम्यवादी चाहते है कि मनुष्य के विचार में ही क्रान्ति हो जाय, जिससे कि तज्जनित समाज-व्यूहन यथासम्भव कम कष्ट के साथ उचित प्रकार से हो जाय। यह बात भी स्मरण रखना चाहिये कि धन का लालच लोगों में इस कारण भी होता है कि आजकल उसी में सम्मान और उसी में शक्ति है। और उसी में आमोद प्रमोद के भी सब साधन हैं। यदि सार्वजनिक रूप से आमोद प्रमोद की आयोजना हो जाय, यदि बिना धन के सम्मान और शक्ति मिल सके, तो उसकी लालसा भी कम हो जाय। साम्यवादी इसका प्रबन्ध करना चाहता है। वह विद्वानो को आदर-सत्कार, राज्य भार ढोने वालों को शक्ति अधिकार देना चाहता है, पर वह व्यर्थ के ऐश-आराम, निरर्थक धनराशि इन्हे नहीं दे सकता। वह बेकारों की सेना, चाहे वे धनी हो चाहे वे दरिद्र हों, नहीं पाल सकता। वह सब को उपयुक्त शिक्षा देता है, सबसे उपयुक्त काम लेता है। सबको उपयुक्त दाम देता है और सबके आराम की व्यवस्था करता है। काम, दाम और आराम का समुचित समन्वय ही साम्यवाद है। इसी में सबको अपना जौहर दिखलाने का मौका मिल सकता है। इसी से मनुष्य समाज चिरकाल के लिए सुसङ्गठित रह सकता है।

हम साधारण लोगों को, जो हर प्रकार की अनावश्यक राज-शक्तियो से डराये धमकाये हुए हैं, जो प्रतिदिन के भयंकर परिश्रम से दबे हुए हैं, जो अपने पेशों की अवनति से चिन्तित हैं, जो अपनी सन्तति की शिक्षा, विवाह, जीविका आदि समस्याओं को हल करने में विह्वल और व्याकुल हैं, उनके लिये साम्यवाद के सिद्धान्त पर स्थापित समाज-व्यूहन से बढ़कर कोई आश्रय नहीं है। हम काम चाहते हैं, हम मेहनत से भागते नहीं, हम आवश्यकता से अधिक भी लालसा नही रखते। हम पूछते हैं कि हमारे लिये व्यवस्था क्यों नहीं हो रही है। वर्तमान पूंजीवादी समाज हमारा सन्तोष नहीं कर सकता क्योंकि उसे हमारी आवश्यकता नहीं है। साम्यवाद की ही शरण आजकल हमारे जो सम्मानित अधिकार प्राप्त धनी लोग हैं उनकी भी वास्तविक स्वार्थसिद्धि साम्यवाद में ही है। उनके पास हर प्रकार का भोजन का प्रवन्ध होते हुए भी उनको बेकारी सताती है। उनसे समय काटा नहीं जाता। काल काल की तरह उन्हे ग्रसता है। काम करने से ही समय कटता है। काम में जो आनन्द है उससे वे वञ्चित हैं। वे नाना प्रकार की आधियों और व्याधियों से पीड़ित रहते हैं जिनसे न मुसाहिब न वैद्य उन्हें बचा सकते हैं। उनको चोरों, शत्रुओं, रिश्तेदारो नौकरों आदि से सदा भय लगा रहता है। हजार यत्न करने पर भी वे संसार की छूत से बच नही सकते और उनका घर चाहे उनके धन के कारण कितना ही स्वच्छ और सुन्दर क्यों न हो, बगल के झोपड़ो में पैदा हुई गरीबी की बीमारियां, वायु और जल, धोबी और हलवाई के द्वारा उनके पास अवश्य पहुँच कर अनर्थ करती है। उनका भी स्वार्थ इसी में है कि सारा समाज उपयुक्त भोजन और वस्त्र, उपयुक्त शिक्षा, आमोद प्रमोद तथा निवास स्थानों से पूरित रहे, सभी अपने अपने कामों को सुचारु रूप

से करते रहें, सब ही स्वच्छ, स्वस्थ और प्रसन्न रहें जिससे वे स्वयं भी यथासंभव अनिवार्य कष्टों से सुरक्षित रहें। इस समय समाज के जितने अंग हैं उन सबको—पूंजीपतियों तक को—बावजूद उनके वैभव के—पूंजीवाद ने जर्जर कर रखा है। सब अंग, सब व्यक्ति, सब समूह, साम्यवाद में अपनी वास्तविक स्वार्थ की सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं, व्यर्थ की परेशानी प्रतिद्वन्द्विता, रोष और द्वेष में जीवन न बिताकर हम सब सहयोग के साथ उपयोगी और सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते है।

सारी शक्ति जनता के हाथ में आवे

'साम्प्रदायिकता का इलाज साम्यवाद है'

[लेखक—आचार्य नरेन्द्रदेव जी]

कुछ लोगो के मस्तिष्क मे यह गलत बात बैठ गयी है कि कुछ लाख व्यक्तियों के जेल मे चले जाने से स्वतन्त्रता मिल जायगी। हमें इस विचार-धारा के विरुद्ध युद्ध करना होगा, नहीं तो यह बहुत खतरनाक साबित होगी।

यदि आप ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समझौता चाहते हैं तो आपके साथ बराबरी का बर्ताव नहीं किया जायगा। शासक जाति हमें कुछ सुविधाएँ तथा सुधार दे देगी। वह हम से समझौता

करने को उत्सुक है किन्तु उसे भय है कि कांग्रेस उसे निरर्थक न करदे, क्योंकि इसका ध्येय पूर्ण स्वाधीनता है।

साम्प्रदायिकता का विष

यह कहना कि हिन्दू-मुसलिम समझौता हो सकता है, बिलकुल गलत है। साम्प्रदायिकता के जहर को नष्ट करने के लिये साम्य-वाद ही एक उपचार है। हम साम्प्रदायिक ऐक्य के पीछे बेकार मे पागल बनकर साम्प्रदायिक निर्णय तथा अन्य इसी प्रकार की कागजी बातों के सहारे खड़े हो रहे हैं। ये उन लोगो के बनाये हुए हैं, जो सरकार से समझौता करना चाहते है। इस प्रकार की विचार-धारा को टुकड़े टुकड़े कर देना चाहिये क्योंकि साम्प्रदायिक ऐक्य हमारी समस्याओ को हल नहीं कर सकता।

कांग्रेस क्या करे ?

कांग्रेस सार्वजनिक संस्था न होकर निम्न-मध्यम-श्रेणी की संस्था है। सरकार ने देशी नरेशो, जमींदारो और मिल मालिको को कुछ सुविधाएँ देकर उन्हे अपनी ओर मिला लिया है। किन्तु निम्न-मध्यम-श्रेणी, जो सारे देश मे कांग्रेस संस्थाओ का स्तम्भ है, राजनीति में स्थिर भाव नही रख सकती। इस श्रेणी की विचार-धारा समयानुसार बदला करती है। पूंजीवाद के फलने फूलने से यह भी समृद्ध होती है। इसी लिये इसका आश्रय ग्रहण नही किया जा सकता। सिद्धान्तो की अपेक्षा इसमे व्यक्तित्व का अधिक प्रभाव है। कांग्रेस के लिये इसीलिये यह आवश्यक है कि वह देश के किसान और मजदूरो से नयी सन्धि स्थापित करे। हम बुद्धि-जीवियो के सहारे भी नही रह सकते, क्योंकि वे हमें किसी समय भी धोखा दे सकते हैं। स्वतन्त्रता की लड़ाई किसान और मजूरों के सहारे ही हो सकती है।

मैं नौकरियों के भारतीकरण के पक्ष में नहीं हूं, क्योंकि इससे टैक्स देने वालों का बोझ अधिक बढ़ जायगा और मध्य श्रेणी के लोग, अपने स्वार्थों को शासकों के स्वार्थों से सम्बन्धित कर अधः-पतित हो जायँगे। भारतीय-करण से भारतीयों की एक ऐसी श्रेणी पैदा हो जायगी, जिसके स्वार्थ जनता के स्वार्थों से संघर्ष करेंगे। इसी दृष्टिकोण से मैं हिन्दू महासभा और मुसलिम लीग के रुख का विरोध करता हूँ।

रोक क्यों हटायी गयी

भारत सरकार ने कांग्रेस संस्थाओं पर से इसलिये रोक उठा ली है कि सरकार चाहती है कि कांग्रेस कौंसिलों में काम करे। यदि कांग्रेस अपने सार्वजनिक कार्य के क्षेत्र को व्यापक बनाने का कभी प्रयत्न करेगी तो आर्डिनेन्स और दमनकारी कानून उसका दमन कर देंगे। यही कारण है कि सरकार ने अन्य संस्थाओं पर से रोक नही उठायी है क्योंकि वे सच्चे रूप से साम्राज्यवाद की विरोधिनी थीं।

जनता साम्यवाद को भली प्रकार समझ सकती है। यदि कांग्रेस वास्तव में देशवासियों का भला चाहती है तो वह इसलिये लड़े कि 'सारी शक्ति जनता के हाथ में हो।'

समाजवादी और राष्ट्रीयता

दक्षिण पक्षवालों के आक्षेप साधारणतः दो तरह के हैं। पहला यह कि समाजवादी सब से पहले अन्तर्राष्ट्रीयतावादी हैं और इस कारण स्वाधीनता संग्राम में उनपर पूरा पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता। कहा जाता है कि ऐसी अवस्थाएं उत्पन्न हो सकती हैं जिनमें हम समाजवाद पर देश की स्वाधीनता की बलि चढ़ाने को तैयार हो सकते हैं। इस शंका के अंकुर को ही उखाड़ देने के लिये मैं यह बात जोर देकर कह देता हूँ कि स्वाधीनता और समाजवाद

में परस्पर विरोध नहीं हैं। सच तो यह है कि शासनाधिकार प्राप्ति के विना समाजवादी राष्ट्र का निर्माण किया ही नहीं जा सकता और भारत की वर्तमान अवस्था में जो साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलन चल रहा है वह समाजवाद की प्रस्तावना मात्र है। हममें राष्ट्राभिमान का अभाव हो यह वात भी नहीं है। अवश्य ही उग्र अथवा लड़ाकी राष्ट्रीयता से हमें घृणा है और 'मैं अपने देश के साथ हूँ, चाहे वह न्याय पर हो वा अन्याय पर'—यह हमारा सिद्धान्त नहीं है। हम दूसरों को उनके पूर्व पुरुषों से मिली हुई विरासत से वंचित करना भी नही चाहते, वल्कि हम उनके साथ मित्रता का सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं और उनके सहयोग से ऐसे विश्वसमाज का निर्माण करना चाहते हैं जिसमें गरीब और कमजोर धनवानों और बलवानों द्वारा चूसे न जाते हों और जिसकी स्थापना मानव जाति के स्वतन्त्र सहयोग के आधार पर हुई हो।

शायद कुछ लोगों को सन्देह हो कि मैं समाजवादी की स्थिति ठीक ठीक वता रहा हूँ या नहीं, इसलिये मैं अपने कथन की पुष्टि में लेनिन के नीचे लिखे वाक्य पेश करता हूँ—'क्या राष्ट्राभिमान का भाव वृहत् रूस की वर्गबोधवाली जनता के स्वभाव के विरुद्ध है? कदापि नहीं। हम अपनी भाषा और देश को प्यार करते हैं। हमारे हृदय राष्ट्रा-भिमान से भरे है और यही कारण है कि अपनी पिछली (और) आज की गुलामी को हम एक खास तरह की नफरत की निगाह से देखते है। कोई राष्ट्र जो दूसरे देश वालों पर जोर जुल्म कर रहा है, स्वयं स्वतन्त्र नही हो सकता—यह शिक्षा है १९ वीं शताब्दी की युक्ति संगत लोक सत्ता के महान् प्रतिनिधि मार्क्स और एंजेल की जो आज क्रांतिवादी जनवर्ग के गुरु और शिक्षक हैं। और चूंकि हमारे हृदय राष्ट्राभिमान से भरे

हुए हैं इसलिये वृहत् रूस के हम श्रमी जन ऐसे वृहत् रूस को देखना चाहते हैं जो स्वतंत्र और स्वाधीन, लोकतन्त्रवादी और प्रजातंत्रयुक्त तथा अपने ऊपर गर्व करने वाला हो और अपने पड़ोसियों के साथ जिसका व्यवहार समानता के मानवभाव से प्रेरित होकर होता हो, 'हमारा हक सब से पहले है', 'सब हमारा ही हक है'—प्रत्येक राष्ट्र को पतन की ओर ले जानेवाले इस कुत्सित भाव से प्रेरित होकर नहीं।"

कदाचित् इस आक्षेप का कारण मार्क्स के इस बचन का अर्थ समझने में भ्रम होना है कि 'मजदूरों का कोई स्वदेश नहीं होता। मार्क्स ने इस वाक्य के द्वारा केवल यही बताना चाहा है कि मजदूर वर्गवाले अपने ही देश में हीन समझे जाते और सब अधिकारों तथा सुख सुविधाओं से वंचित होते हैं, जिसमें लड़कर अपने लिये अधिकार प्राप्त करने की आवश्यकता उनपर साबित हो जाय।

स्वाधीनता संग्राम और समाजवादी

(ले०—आचार्य नरेन्द्र देवजी)

दूसरा आक्षेप यह है कि इस समय वर्गयुद्ध का प्रश्न उपस्थित कर हम आजादी के लिये लड़नेवालों में फूट डालते और स्वाधीनता-संग्राम को कमजोर बना रहे हैं। हमे यह कहने के लिये क्षमा किया जाय कि वर्तमान स्थिति मे मजदूरो और किसानो को राजनीतिक लड़ाई में शामिल किये बिना हमारे लिये स्वाधीनता प्राप्त करना असम्भव है। दुर्भाग्यवश कांग्रेस ने अब तक साधारण जनता के पास ठीक रास्ते से पहुंचने की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया। हम कांग्रेस पर जानबूझ कर लापरवाही दिखाने का दोष नहीं लगाते, उलटे देश मे वही एकमात्र ऐसी राजनीतिक संस्था है जिसने साधारण जनता के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का यत्न किया है। फिर भी उसके पास पहुॅचने का उसका रास्ता ठीक नही था और इसलिये उसके यत्न उतने सफल नहीं हुए जितने समुचित रूप मे होने से हो सकते थे। इस मौके पर कांग्रेस का एक नयी नीति स्वीकार करना बहुत ही आवश्यक हो रहा है और यह कार्य इस बात को पहले से मान कर करना होगा कि देश मे कुछ ऐसे विशेष वर्ग हैं जिनके सामने पहले उनके आर्थिक हित की बात रखनी होगी, इसके बाद वे राज-

नैतिक कार्य के लिये संघटित किये जा सकेंगे, और साम्राज्यवाद विरोधी युद्ध में जिनका प्रभावकारी रूप में उपयोग कर सकने के पहले वर्ग के आधार पर उनका संघटन करना होगा। चूंकि विदेशी साम्राज्यवादियों ने अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिये देश के प्रगति-विरोधी वर्गों—राजाओं, जमींदारों और पूंजीपतियों को अपनी ओर मिलाकर गुट बना लिया है, इसलिये हमारे लिये यह और भी आवश्यक हो गया है कि देश के उग्र परिवर्तन चाहने वाले वर्गों को अपने पक्ष में लावें और साम्राज्यवादियों और उनके स्वदेशी मिलों के नये गुट का मुकाबला करने के लिये सफेद पोश, मजदूर और किसान वर्गों को अपनी ओर लाकर एक संयुक्त दल बनावें। भारत का पूंजीपति वर्ग मध्यवित्त वर्ग का लोकतन्त्र शासन स्थापित करानेवाली क्रान्ति का नेतृत्व नहीं ग्रहण कर सकता। पूंजीवाद बहुत दिनों से क्रान्तिकारी शक्ति नहीं रह गया है। भारत में तो उसका सामाजिक आधार बहुत ही संकुचित है और इस कारण वह अकेले कोई कार्य नहीं कर सकता। इसके सिवा भारत के देहात का सरदारी या जगीरदारी ढङ्ग का आर्थिक सङ्गठन और सब प्रकार के सामाजिक सम्बन्धो पर असर डालता है। इसलिये पूंजीवादी वर्ग ने जमीदारो के साथ दोस्ती गांठ ली है और ऐसी अवस्था में वह जमींदारी प्रथा का नाश करेगा, इसकी आशा उससे नहीं की जा सकती। इस प्रकार भारत की चूसी जाने वाली जनता के लिये इस कार्य को भी पूरा करना आवश्यक हो रहा है जो पश्चिम में मध्यवित्त वर्ग ने किया था।

भारत के जमींदार ब्रिटिश राज की सृष्टि हैं और वे स्वभावतः वे पूंजीपति वर्ग से सहायता पाने का भरोसा रखते हैं। कुछ थोड़े से व्यक्तियों को जमींदार वर्गरूप से राष्ट्रीय संग्राम से अलग रहे हैं। और वर्गगत संघर्ष ज्यों ज्यो बढ़ता जायगा वे विरोधी पक्ष की

ओर अधिकाधिक होते जायँगे। यह बात स्पष्ट है कि भविष्य में स्वाधीनता संग्राम को चलाने का बोझ मुख्यतः मजदूरों, किसानों और सफेदपोश वर्गों को ही अपने ऊपर लेना होगा।

चीन का उदाहरण

देश की विभिन्न शक्तियों के परस्पर सम्बन्ध पर बारीकी से विचार करने से कांग्रेस के वर्तमान कार्यक्रम के नाकाफी होने की बात प्रकट हो जायगी। इस कार्यक्रम के प्रत्येक अङ्ग की जांच पड़ताल और संशोधन परिवर्तन होना अत्यावश्यक हो गया है। हमे "कुओमिनतांग" अर्थात् चीनवालों के राष्ट्रीय संघटन के पिछले इतिहास से शिक्षा लेनी चाहिये। १९२४ मे अपने पुनस्संघटन सम्मेलन मे उसने निश्चय किया कि आगे से वह मजदूरों और किसानो के हित की ओर खास तौर से ध्यान दिया करेगा। निश्चय को कार्य का रूप दिया गया और मजदूरों किसानो की हितरक्षा के लिये "कुओमिनतांग" के विशेष विभाग खोल दिये गये। हर एक गाँव और जिले मे किसानो के संघ बनाये गये और बड़े जमींदार तथा महाजन कड़ाई के साथ उनकी सदस्यता से अलग रखे गये। इन्ही के संघो के द्वारा जमींदारों के आर्थिक और राजनैतिक शक्ति के विरुद्ध किसानो के आन्दोलन का संघटन हुआ। किसान आन्दोलन बन की आग की तरह देश में फैल गया और तीन ही साल के अरसे मे केवल एक प्रान्त मे उसके सदस्यो की संख्या कई लाख हो गयी। चीनी मजदूरों के भी संघ बन गये और उनके बीच मे जाकर काम करने का नतीजा यह हुआ कि चीन के मजदूर शीघ्र ही बहुत बड़ी राजनैतिक शक्ति बन गये।

१९२६-२७ की क्रान्ति मे कुओमिनतांग के इस नये कार्यक्रम की ही बदौलत ऐसी चमत्कारिणी सफलता मिल सकी और यदि

इस क्रान्ति के नेता ही पीछे क्रान्तिविरोधी न हो गये होते तो चीन आज एक स्वाधीन देश होता और उसके पास इतना बल होता कि जापानी साम्राज्यवाद के हमलों को व्यर्थ कर दे तथा उसकी धमकियों को लापरवाही के साथ अनसुनी कर सके।

कांग्रेस और मजूर आन्दोलन

यह बात सोचने से दुःख होता है कि कांग्रेस ने कारखाने के मजूरों की लगातार उपेक्षा की है जिसका नतीजा यह हुआ कि मजूर कांग्रेस से फटे फटे रहते हैं। दुर्भाग्यवश मजूर संघों में आज कांग्रेस की ओर से उदासीनता ही नहीं किन्तु स्पष्ट विरोध का भाव भी दिखाई दे रहा है। फल यह हुआ है कि कांग्रेस आज ऐसी स्थिति में नहीं है कि अपनी सहायता मे मजूरों से राजनैतिक हड़ताल करा सके। देश में मजूरों की जबर्दस्त हड़तालें हो चुकी हैं पर आम तौर से वे आर्थिक स्वरूप की ही हड़तालें रही हैं। मजूरों के आर्थिक आन्दोलन को अभी राजनैतिक आन्दोलन का रूप नहीं प्राप्त हुआ। यही कारण है कि भारत के मजूर राजनैतिक शक्ति की दृष्टि से आज इतने कमजोर हैं और उनका राजनैतिक महत्व इतना कम है। मैं वर्तमान स्थिति का, जैसी कुछ वह मुझे दिखाई देती है, वर्णन मात्र कर रहा हूं। मैं एक क्षण के लिये भी यह नहीं मानता कि एक क्रांतिकारी शक्ति की हैसियत से मजूरों के आन्दोलन अधिक महत्व के नहीं हैं और न मैं इसी बात से इनकार करता हूँ कि समुचित कार्य प्रणालो से काम लेने से वह सहज ही जबर्दस्त राजनैतिक ताकत बन सकता है और राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व अपने हाथ मे ले सकता है। हमारे देश की आज की अवस्था में यह बात केवल एकही तरीके से हो सकती है। मजूरों को कांग्रेस के साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन में

शामिल होना चाहिये। भारत मे हड़ताल का हथियार अभी जन-वर्ग के संघर्ष का संकेत नहीं बना है, जैसा कि रूस में हुआ था। पर मजूर वर्ग अपना राजनैतिक प्रभाव तभी बढ़ा सकता है जब आम हड़ताल के हथियार को राष्ट्रीय संग्राम की सहायता में इस्ते-माल करके वह सफेदपोश वर्ग के मन पर यह बात जमा सके कि यह हथियार क्रान्ति का साधन बन सकता है। कांग्रेस को कोई कितना ही क्यो न कोसे देश मे आज वही एकमात्र ऐसा संघटन है जिसके सुविस्तृत मंच पर से साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन आप चला सकते हैं। और वही एकमात्र ऐसा केन्द्र है जहां से इस संग्राम का संचालन किया जा सकता है। जनवर्ग के संघर्ष के लिये कांग्रेस एक विस्तृत मैदान है, जहां जाकर मजूर और किसान राजनीति की शिक्षा प्राप्त कर सकते और अपना प्रभाव तथा प्रतिष्ठा बढ़ा सकते हैं।

समाजवादी दल का जन्म कैसे हुआ।

स्पष्ट ही है कि आक्षेप करनेवाला इस बात पर ध्यान नहीं देता कि किस परिस्थिति में कांग्रेस समाजवादी दल का जन्म हुआ है और वह देश की साधारण राजनैतिक स्थिति पर भी ध्यान नहीं देता।

यह दल किस कारण से कांग्रेस के अन्दर है इसको ढूंढ़ने के लिये दूर जाने की जरूरत नहीं है। संग्राम मे कांग्रेस जनो के एक दल मे आमूल परिवर्तन का विचार उत्पन्न होने में इस दल का जन्म हुआ है। वे लोग संसार के 'समाजवादी' विचारो से प्रभावित हुए। उन्होने देखा कि पश्चिम के लोकतन्त्र पर संकट आया है और पार्लमेंटरी संस्थाएं चारो ओर से चूर चूर हो रही है। उन्होने यह भी देखा कि फासिटीवाद का खतरा बढ़ता जा

रहा है, पूंजीवाद का क्षय हो रहा है और वह साम्राज्यवाद की अन्तिम अवस्था में पहुँच गया है। उन्होंने स्पष्ट देखा कि संसार के सामने स्वीकार करने के लिये दो ही चीजें हैं, वह या तो फासिटीवाद को स्वीकार करे या समाजवाद को, और पूंजीशाही का भविष्य कुछ नहीं है। उन्होंने देखा कि संसार भारी अर्थ संकट के बीच में पड़ा हुआ है जिसका अन्त नहीं दिखाई देता। उन्होंने देखा कि केवल रूस ऐसा है जो समाजवाद की ओर से ठोस रूप से अग्रसर हुआ है और अंधकार के बीच में गरीबों, दलितों और कुचले हुए लोगों के लिये एकमात्र वही आशा है। आज दिन महान् स्फूर्तिदायक है, क्योंकि वह मानवसमाज के नये समय का अग्रदूत है।

दूसरे देशों की क्रान्तियों के इतिहास पढ़ कर वे लोग इस नतीजे पर पहुँचे कि कांग्रेस का कार्यक्रम आमूलतः बदल कर पूर्ण-स्वाधीनता प्राप्ति का बना देना चाहिये। साम्राज्यवाद विरोधी युद्ध की अत्यन्त आवश्यकता ने उनको इस अवस्था में पहुँचाया और उन्होंने कांग्रेस के सभा मंच को साम्राज्यवाद विरोधी युद्ध का मैदान बना देने की बिलकुल ठीक बात सोची।

ऐसी स्थिति में हम लोगों के कांग्रेस से अलग होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। हमसे अलग दल बनवाने के लिये तो और ही लोग जिम्मेदार हैं। यदि देश में श्रमजीवियों का सच्चा दल होता जो भारत की स्थिति के अनुकूल उपयुक्त कार्यप्रणाली से काम करता, यदि वह जनवर्ग से और राष्ट्रीय आन्दोलन से अपने को अलग न रखता, यदि वह इसी देश में जड़ जमाता और इस नीति का पालन करता कि मौलिक सिद्धान्तों का उपयोग इस प्रकार होना चाहिये कि खास खास विषय में उनका सच्चा सुधार भी होता चले, उपयुक्त रीति से

कार्यान्वित हो सकें और राष्ट्र की सम्मति का ख़याल रखकर उनका उपयोग हो सके, इसके विपरीत यदि वह अपने को एक ऐसी विदेशी संस्था का पुछल्ला न बनाये रहता जो अपनी अदूरदर्शिता और नौकरशाही ढङ्ग की नियन्त्रण प्रणाली के कारण अपना पूर्ण गौरव और प्रभाव बहुत कुछ खो चुका है तो अलग दल सङ्गठित करने की कोई आवश्यकता ही न पड़ती। यह दल साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन को चलाने के लिये कांग्रेस मञ्च का उपयोग करता है। यह किसानों और मजूरों के अलग अलग संघ स्थापित करता है। व्यवसाय संघ क्षेत्र में यह सर्वभारतीय मजूर संघ कांग्रेस के पूर्ण सहयोग से काम करता है और जनवर्ग में काम करता है और जनवर्ग को यह जितना ही अधिक अपनावेगा और अपने वास्तविक और ठोस काम से उसका विश्वास जितना ही अधिक अपने पर बढ़ावेगा उतना ही इसका प्रभाव भी जनवर्ग पर बढ़ेगा।

हम दृढ़ता पूर्वक शक्तिसञ्चय कर रहे हैं और यह कह सकते हैं कि थोड़े ही दिनों में हम समाजवाद के अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने और साम्राज्यवाद विरोधी अपने कार्यक्रम के पक्ष में जन-साधारण का विशेष समर्थन प्राप्त करने मे सफल हुए हैं। अभी यह नियम है कि हमारे दल के सदस्य केवल कांग्रेसजन ही हो सकते है, समय पाकर हम इस नियम में भी संशोधन करेंगे। यह भी सम्भव है कि समय पाकर सब समाजवादी समूह मिलकर एक दल में परिणत हो जायँ। पर जब तक ऐसा नहीं होता तब तक हमें अलग अलग दलो में रहकर ही काम करने मे सन्तोष मानना चाहिये और साथ ही यह भी कोशिश रखनी चाहिये कि जिन विषयों में हम मिलकर काम कर सकते हों उनमें सह-योग करें।

मुझे बताया गया है कि लोग कहते हैं कि हमारा समाजवाद दिखाऊ है। यह आक्षेप शायद इसलिये किया जाता है कि हमारी संस्था कांग्रेस से सम्बद्ध है। हम कांग्रेसजनों के सहसा समाजवादी हो जाने पर आश्चर्य प्रकट किया जाता है और हमारी सचाई पर सन्देह किया जाता है। यह दलील दी जाती है कि जो लोग इतने दिनों तक गान्धीवाद के प्रभाव में रहे हों वे सहसा समाजवाद नहीं स्वीकार कर सकते। यह बात श्रमजीवियों के लिये अधिक उपयुक्त है। वे यदि अपनी मर्जी पर छोड़ दिये जायँ तो उनमें केवल व्यवसायसंघवाद की ही भावना तक उत्पन्न हो सकती है। हमें यह भूलना नहीं चाहिये कि समाजवाद का विचार स्वतन्त्र रूप से उत्पन्न हुआ, श्रमजीवियों के आन्दोलन को आधार मानकर नहीं। समाजवाद की ओर झुकाव रखनेवालो के विचार में क्रांति होने के फलस्वरूप स्वभावतः समाजवाद की उत्पत्ति हुई।

मेरी समझ में तो कांग्रेस के अतिउग्र विचारवालों ने साम्राज्यवाद विरोधी जो कार्यक्रम स्थिर किया है और जिसके आधार पर वे लड़ाई ठानना चाहते हैं वह बहुत ही नरम है। यह कार्यक्रम तो लड़ाई का कार्यक्रम कहला नहीं सकता। साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन में सफलता प्राप्त करने के लिये यह सर्वथा अनुपयुक्त है। देश मे जो लोग जनवर्ग को चूसने वाले हैं उनके विरुद्ध जनवर्ग को सङ्गठित करने की तो कोई योजना इस कार्यक्रम में है ही नहीं। कार्यक्रम में किसान मजूरों की आर्थिक उन्नति की जो योजना है वह इतनी मामूली है कि उसके आधार पर साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन मे पड़ने के लिये जनवर्ग सङ्गठित हो नहीं सकता।

समाजवादी दल का कर्तव्य

कांग्रेस समाजवादी दल के कर्तव्य पर बम्बई के एक अखबार ने हाल मे विचार किया है। लेखक ने सहानुभूति के साथ इस पर

विचार किया है और इस दल का स्वागत किया है, मगर सलाह दी है कि यह दल तभी प्रभावशाली हो सकता है जब अपने को तोड़ दे और कांग्रेस का वामपक्ष बन कर काम करे। कहा जाता है कि कांग्रेस से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह समाजवाद को अपना उद्देश्य बनावे, इसलिये कांग्रेस मे समाजवाद की चर्चा करने से निश्चय ही साम्राज्यवाद विरोधी युद्ध के काम पर उलटा प्रभाव पड़ेगा। मै स्वयं इस बात से सहमत हूँ कि कांग्रेस समाजवाद के प्रचार की जगह नहीं है और उसका मुख्य कार्य साम्राज्य विरोधी युद्ध को बढ़ाना है। परन्तु हमे यह भूल न जाना चाहिये कि वर्तमान स्थिति मे ऐसा युद्ध तभी बढ़ सकता है जब हम उसमें जनता की आर्थिक मांगो को शामिल कर सकें और यह तभी हो सकता है जब कांग्रेस मे एक ऐसा दल हो जो आर्थिक कार्यक्रम स्वीकार कराने के लिये लगातार आन्दोलन करता रहे। मेरा यह भी मत है कि कांग्रेस कार्यकर्ताओ मे समाजवाद के प्रचार के लिये लगातार कार्य करने की अत्यन्त आवश्यकता है, क्योकि हम इसमें जितने अधिक सफल होगे कांग्रेस के साम्राज्यवाद विरोधी युद्ध का प्रभावशाली कार्यक्रम स्वीकार करने की उतनी ही अधिक सम्भावना होगी। अगर दूसरे किसी कारण से न सही तो इस कारण से ही इस दल को अपना काम जारी रखना होगा। यह बहुत जरूरी काम उस दल से नही हो सकता जिसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है और मै समझता हूँ कि गत बारह महीनो के अनुभव से हमने जो मार्ग अवलम्बन किया है उसका औचित्य भलीभांति सिद्ध हो जाता है। अब रह गयी बात अपनी उस नीति पर फिर से विचार करने की जिसको हम अब तक कांग्रेस के अन्दर बरतते आये है। मै अपना मत पहले व्यक्त कर चुका हूँ कि उसमे जरा सा मगर महत्वपूर्ण संशोधन की आवश्यकता है और मैने यह भी

बता दिया है कि किस दिशा में यह परिवर्तन होना चाहिये। मुझे मालूम है कि इस विषय पर इस दल का ध्यान जा रहा है और मुझे आशा है कि अगर इस दल को विश्वास हो जायगा कि परिस्थिति उसकी नीति में यह परिवर्तन चाहती है तो वह निश्चय ही इस सम्बन्ध में उचित कार्रवाई करेगा।

कांग्रेस वर्किंग कमेटी और साम्यवादी दल।

[लेखक—आचार्य नरेन्द्रदेव]

कांग्रेस वर्किंग कमेटी की ओर से कांग्रेस साम्यवादी दल पर जो आक्षेप किये गये हैं उनका उत्तर देना कर्तव्य सा होगया है। साथ ही साथ कमेटी की वर्तमान नीति की आलोचना करना भी आवश्यक मालूम होता है। साम्यवादी दल के प्रति कमेटी का जो बदला हुआ रुख है वह भी उसकी वर्तमान नीति का ही फल है। इसलिये उसकी नीति की चर्चा करना भी असंगत न होगा।

वर्किंग कमेटी की टीका-टिप्पणी करते हुए मुझे कोई खुशी नहीं होती, केवल कर्तव्य की दृष्टि से ही इस अरुचिकर कार्य में प्रवृत्त होना पड़ता है। साथ ही साथ आत्मरक्षा का भी ख्याल है। वर्किंग कमेटी ने साम्यवादी दल पर जो गहरी चोट की है उसको

चुपचाप बर्दाश्त कर लेना अहिंसा के सिद्धान्त के अनुकूल भले ही हो किन्तु वह कायरता-पूर्ण कार्य होगा। यदि किसी गैरजिम्मेदार संस्था की ओर से ऐसी बात कही गई होती तो उसकी उपेक्षा की जा सकती थी। किन्तु वर्किंग कमेटी ऐसी जिम्मेदार और प्रभावशाली संस्था की किसी भी बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती। फिर वर्किंग कमेटी ने जो आक्षेप हम लोगो पर किये हैं वह कोई साधारण आक्षेप नहीं हैं। वह तो हमको कन्ने से ही काटना चाहती है। वह तो हमको कांग्रेस में कोई स्थान देने को तैयार नही है। यदि उसका बस चले तो वह हमको आज कांग्रेस से निकाल दे।

यदि वर्किंग कमेटी यह कहती कि वह साम्यवादी दल के सिद्धान्त और उसकी नीति को स्वीकार नहीं करती तो हमको कोई आपत्ति न थी। चुनाव की आवश्यकताओं को देखते हुए शायद इतनी सफाई देने से उसका काम भी चल जाता। हमारी सबसे बड़ी शिकायत तो यह है कि वर्किंग कमेटी ने हमारी बात को बिना सुने ही हमारे सम्बन्ध मे कुछ गलत धारणाएँ बना ली हैं और उन्ही के आधार पर कांग्रेस के दायरे में हमारे बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिये अहिसा की शरण लेकर हमारे ऊपर एक जबर्दस्त वार किया है। हमने साम्यवादी कानफरेन्स के मुख्य प्रस्ताव की कुछ प्रतिलिपियाँ वर्किंग कमेटी के पास पटने मे भेज दी थीं और हमारी यह परम इच्छा थी कि वहाँ अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी मे उस प्रस्ताव पर विचार हो। किन्तु हमारे सब प्रयास विफल हुए और सभापति महोदय ने यह कह कर हमारे प्रस्ताव को टाल दिया कि वर्किंग कमेटी ने अभी उस प्रस्ताव पर विचार नही किया है। हमको यह बचन दिया गया था कि कमेटी के बम्बई के अधिवेशन में इस प्रस्ताव पर विचार करने का

अवसर दिया जायगा। हम समझते थे कि बम्बई के अधिवेशन तक वर्किंग कमेटी की ओर से ऐसी कोई काररवाई न होगी जिससे प्रस्ताव के स्वतन्त्र विचार मे किसी प्रकार की बाधा उपस्थित हो। वर्किंग कमेटी को पूरा अधिकार था कि वह उस प्रस्ताव के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट कर देती। पर जो आक्षेप हमारे ऊपर किये गये हैं उनसे हमारे प्रस्ताव से कोई सम्बन्ध नहीं है। उस प्रस्ताव में तथा कानफरेन्स के अन्य प्रस्तावों में जायदाद की जब्ती अथवा श्रेणी–युद्ध की आवश्यकता की कोई चर्चा नहीं है। हमने अपने प्रस्तावों में या भाषण में असंयत भाषा का कदापि प्रयोग नहीं किया है। हमने अपने प्रस्ताव में केवल इतनी बात कही है कि पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपरान्त देश का शासन-विधान तैयार करने के लिये एक विधान सम्मेलन (कांस्टिटुएन्ट असेंबली) बुलाई जानी चाहिये और उस सम्मेलन में जो विधान तैयार किया जाय उसे साम्यवाद के सिद्धान्तों के आधार पर बनाना चाहिये। साम्यवाद के कुछ मौलिक सिद्धांतों का भी हमने निर्देश कर दिया था। इनमें से एक दो सिद्धांतों का यहाँ उद्धृत करना आवश्यक है। पहिला सिद्धान्त तो यह है कि देश के भावी शासन में प्रधान व्यवसाय व्यक्तियो की संपत्ति न होकर समाज की संपत्ति हो; जिसमें धीरे धीरे उत्पादन, वितरण और विनियम के सकल साधन समाज के हाथ में आ जावें। इसीके आधार पर यह कहा जाता है कि हम व्यक्तिगत सारी सम्पत्ति को जब्त करना चाहते हैं। इसीका समकक्ष प्रस्ताव करांची कांग्रेस तथा अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी द्वारा स्वीकृत हुआ है। उसमें भी लगभग यही बात कही गयी है। उसमें कांग्रेस ने स्पष्ट कर दिया है कि हमको ऐसा कोई स्वराज्य स्वीकार न होगा जिसमें प्रधान व्यवसाय, रेल आदि का स्वामित्व राज्य को प्राप्त न हो।

अभी वर्धा मे वर्किंग कमेटी की जो बैठक हुई थी उसमें भी करांची के प्रस्ताव की चर्चा उठी थी और कमेटी ने यह निश्चय किया था कि मेम्बरी की रसीद पर उस प्रस्ताव के खुलासे को छाप देना चाहिये। साथ साथ कमेटी ने एक खुलासा भी तैयार किया और यह खुलासा उसकी ओर से प्रकाशित कर दिया गया है। इस खुलासे में कमेटी ने इस वाक्य का प्रयोग किया है—

"नेशनलाइजेशन आफ दि इण्डस्ट्रीज एण्ड सर्विसेज़, रेलवेज़, एटसेट्रा" अर्थात् देश के प्रधान व्यवसाय राष्ट्र की मिलकियत होंगे। दूसरे शब्दों में, जहाँ तक इन व्यवसायों का सम्बन्ध है, व्यक्तिगत सम्पत्ति का लोप हो जायगा।

करांची के प्रस्ताव मे हरजाना देने या उचित कारणों के देने का कोई जिक्र नही है। यह स्पष्टीकरण वर्किंग कमेटी की ओर से आज पेश किया गया है। यह स्पष्टीकरण इसलिये आज किया जारहा है जिसमें वर्किंग कमेटी दूसरों पर उँगली उठा सके। जो शीशे के मकान में रहता है वह किस तरह दूसरों पर ढेला फेंक सकता है? इसलिये इस स्पष्टीकरण की पत्थर की चहारदीवारी खड़ी कर और अपने को हर तरह सुरक्षित करके वर्किंग कमेटी दूसरो पर आक्रमण करना चाहती हो पर इससे भी उसकी रक्षा नहीं होती क्योंकि इस स्पष्टीकरण में हर हालत में हरजाना देना आवश्यक नही है। वर्किंग कमेटी की राय मे उचित कारण बता कर भी व्यक्तिगत सम्पत्ति राष्ट्र की सम्पत्ति बनाई जा सकती है। क्या केवल कुछ शब्दों के जोड़ देने से ही जो चीज आज हिंसा और विद्वेषमूलक है कल अहिंसा सम्मत हो सकती है? हम मानते हैं कि शब्दों का मायाजाल विचित्र है और हम यह भी मानते हैं कि वर्किंग कमेटी के वह सदस्य या परामर्शदाता जो किसी समय मे वकालत का पेशा करते थे इस कार्य में कुशल और सिद्धहस्त

हैं। प्रस्तावों की भाषा को जान बूझ कर ऐसा रखना जिसमें उसके कई अर्थ लगाये जा सकें एक बहुत बड़ा हुनर है। समय समय पर इससे बड़े बड़े काम भी निकलते हैं। पर इस नीति के बर्तने से और अपने मन्तव्यों को गोलमगोल रखने से स्वतन्त्रता की लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती। शब्दों का क्या जादू होता है इसको जान कर ही प्रस्ताव में 'जब्ती' शब्द का प्रयोग किया गया है यद्यपि हमारे प्रस्तावों में 'जायदाद की 'जब्ती' का कोई जिक्र नहीं है। 'जब्ती' से जोर जबर्दस्ती और हिंसा का भाव झलकता है। हम पूछते हैं कि क्या यह नीति वर्किंग कमेटी को शोभा देती है? क्या यह उसके लिये उचित है कि वह इन उपायों से काम लेकर अपने विरोधियों को दबाने की चेष्टा करे? लुत्फ तो यह है कि कहने को वर्किंग कमेटी हमारा स्वागत उसी तरह करती है जिस तरह कुल में वृद्धि होने पर नवजात शिशु का स्वागत किया जाता है, पर हमारे कांग्रेस के बुजुर्गों के स्वागत का ढंग भी अनोखा है। एक ओर स्वागत करते हैं, दूसरी ओर विष की घूंट पिलाते हैं।

हम अपनी स्थिति इस विषय में स्पष्ट कर देना चाहते हैं। सब प्रकार की व्यक्तिगत सम्पत्ति का लोप कर देना हमको अभीष्ट नहीं है। आज समाज में जो लूट-खसोट हो रहा है और एक वर्ग की ओर से दूसरे वर्ग का अर्थ शोषण हो रहा है केवल उसे हम बन्द करना चाहते हैं। कांग्रेस का भी कुछ दिनोसे यह दावा रहा है कि वह प्रचलित लूट और अत्याचार को बन्द करना चाहती है। इस दावे को वर्किंग कमेटी ने अपने प्रस्ताव में आज भी दुहराया है। हमारा यह विचार है कि उत्पादन के साधनों पर व्यक्तियों का प्रभुत्व होने के कारण ही गरीबों का शोषण और दोहन होता है। समाज की जिस व्यवस्था के कारण जनसाधारण का लुंठन होता है और राष्ट्र की सारी पूंजी मुट्ठी भर आदमियों के हाथ में केन्द्रीभूत हो जाती

है उस व्यवस्था के बदलने से ही अभीष्ट की सिद्धि हो सकती है। पूंजीप्रथा के अनुसार परिचालित समाज में जो वर्ग-कलह चलता रहता है तथा बहुसंख्यक लोगों की दरिद्रता दिन पर दिन बढ़ती जाती है उसका हम अन्त करना चाहते हैं। यदि हम इस संसार से दारिद्र और दैन्य को उठा देना चाहते हैं, यदि हम चाहते हैं कि राष्ट्र के बीच प्रीति और सद्भाव स्थापित हो, यदि प्रत्येक राष्ट्र के भीतर ही जो वर्ग-कलह चलता रहता है उसका हम अन्त करना चाहते हैं, सारांश में यदि हम अपने देश तथा मानव-जाति का सच्चा हित साधित करना चाहते हैं, तो हमको उत्पादन के उन सारे साधनों पर समाज का प्रभुत्व स्वीकार करना चाहिये जिनके द्वारा पूंजी-प्रथा मे समाज की कुछ श्रेणियो को दूसरों के लूटने का अवसर प्राप्त होता है। क्या देश के प्रधान व्यवसाय और बंकों को समाज के अधिकार और प्रभुत्व में लाने के लिये यह उचित और पर्याप्त कारण नहीं है? क्या ९०-९५ फी सदी लोगो के कल्याण के लिये समाज की आर्थिक व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन करने का स्टेट को अधिकार नहीं है? क्या भारत के स्वतन्त्र होने पर लोक-तन्त्र प्रणाली के अनुसार बहुमत से कार्य नहीं होगा? यदि कांग्रेस हमारे कार्यक्रम के सम्बन्ध में यह निश्चय करती है कि अर्थ-शोषण इससे बन्द नहीं होगा अथवा अन्य सुगम उपायों से यही बात हासिल हो सकता है तो उसको अपना कार्यक्रम देश के सामने रखना उचित है।

दूसरी बात हमारे विरुद्ध यह कही जाती है कि हम श्रेणी-युद्ध की आवश्यकता को मानते है। ऐसा हमने कहीं भी नहीं कहा है। हां, बहुत से साम्यवादियों का यह विचार है कि मानव समाज का इतिहास सदा से (जब से इतिहास लिपिबद्ध हुआ है) वर्ग-संघर्ष का इतिहास रहा है। उनका कहना है कि साम्यवाद की

स्थापना ही इस वर्ग कलह को बन्द कर सकती है। इतिहास के अध्ययन की यह एक दृष्टि है। आप इस दृष्टि को स्वीकार न करें। आप कह सकते हैं कि मानव समाज का इतिहास विविध वर्गों के परस्पर सहयोग का इतिहास रहा है। किन्तु यह कहना कि हम लोग अपना मतलब साधने के लिये विविध श्रेणियों को लड़ाने की आवश्यकता स्वीकार करते हैं, हमारे साथ अन्याय करना है। साम्यवादियों का यह कहना है कि वर्ग-संघर्ष तो निरन्तर चलता रहता है। प्रश्न यह है कि इस संघर्ष में हम किसका साथ देंगे। हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस कलह में हम उन लोगों का ही साथ देना चाहते हैं जो पददलित और निर्यातित हैं। हम ९० फीसदी जनता के ट्रस्टी बनना नहीं चाहते। हम यह नहीं चाहते कि उनमे चेतना उत्पन्न न हो और वह सदा हमारी सहायता की अपेक्षा करते रहे। हम चाहते हैं कि राज्य-शक्ति जनता के हाथ में आवे। यह तभी हो सकता है जब हम उनका संगठन आर्थिक आधार पर करें और उनमें इस चेतना को उत्पन्न करें कि राष्ट्र के सच्चे मालिक वही हैं और राष्ट्र का शासन सूत्र उन्हीं के हाथ में रहेगा। जिस प्रकार हम दारिद्र दैन्य का अन्त करना चाहते हैं और यह नहीं चाहते कि दरिद्र नारायण की सेना सदा कायम रहे जिसमें पूंजीपतियों को अपने पाप का प्रायश्चित करने तथा गरीबोंकी सेवा करने का सदा अवसर मिलता रहे, उसी तरह हम यह भी नहीं चाहते कि मध्यम श्रेणी के लोग सदा अधिकारारूढ़ रहें और गरीबो के सन्तोष के लिये उनके आराम की थोड़ी बहुत व्यवस्था मात्र करते रहे। लोकतन्त्र तभी स्थापित होगा जब देश के श्रमजीवी किसान और मजदूरों का राज्य कायम होगा।

यह ठीक है कि किसान और मजदूरो को संघटित करने से हम अमीरों के क्रोधपात्र बन जायँगे और वह नाना प्रकार के

उपद्रव खड़े करेंगे। हम तो जनता को शान्तिमय उपायों द्वारा ही संघटित करना चाहते हैं। हमारी तो यही कोशिश रहेगी कि किसान और मजदूरों का समुचित विनयन हो जिसमें वह दूसरों के उपद्रव का जवाब उपद्रव से न दें। किन्तु हमारे विरोधी हमारे संघटन के इस उद्योग को श्रेणी-युद्ध का स्वरूप देने की चेष्टा करेंगे। इसका हमारे पास कोई इलाज नहीं है। हम इतना ही कह सकते हैं कि हमारा सारा कार्य कांग्रेस की क्रीड के अनुसार होगा।

हिंसा अहिंसा

अब रही हिसा और अहिसा की बात। हमारे इतना कह देने पर भी कि साम्यवादी दल मे वही लोग सम्मिलित हो सकेंगे जो कांग्रेस के सदस्य हैं, कांग्रेस के कर्णधारों का समाधान नही होता। हम आरम्भ मे ही कह देना चाहते हैं कि हम केवल कांग्रेस की क्रीड से बँधे हैं। इस क्रीड मे अहिसा का कहीं भी उल्लेख नही है। सारे उचित और शान्तिमय तरीको से पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना कांग्रेस का ध्येय रखा गया है। वर्किंग कमेटी का कहना है कि हमारे सिद्धान्त (जिनको उन्होने ठीक ठीक नही समझा है) कांग्रेस की अहिसा की क्रीड के विरुद्ध है। वह यह नही कहती कि तुम शान्तिमय तरीको से काम नहीं करना चाहते। 'अहिसा' शब्द हमको प्यारा था किन्तु जब उसके अजब अजब माने लगाये जाते हैं और यह कहा जाता है कि अहिंसा एक आध्यात्मिक वस्तु है, जिसका रहस्य समझने के लिये आध्यात्मिकता के रंग मे रंगने की जरूरत है, जब हमको उसके बारे में यह बतलाया जाता है कि वह साधारण मनुष्यों की बुद्धि के परे है और जितना गहरा आप उसमे प्रवेश करेंगे उतना ही अधिक अलभ्य लाभ आपका होगा, तो हमको विवश होकर कहना पड़ता है कि हमको ऐसी अहिसा की जरूरत नहीं।

यदि कोई अहिंसा की गहराई में प्रवेश करे और उसके सिद्धान्तों पर चलना चाहे तो उसे एक क्षण भी जिन्दा रहना मुश्किल हो जावेगा। अहिंसा की सच्ची कल्पना में शायद किसी प्रकार के भी विरोध को स्थान नहीं है। सम्पूर्ण अविरोध की भावना ही अहिंसा का मूलमन्त्र है। क्या मैं वर्किंग कमेटी के मेम्बरों से पूछ सकता हूँ कि कांग्रेस ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध करने के लिये है या नहीं ? यदि वह विरोध करने के लिये है तो यह कहां तक अहिंसा के सिद्धान्त के अनुकूल है ?

यदि हम अपने शास्त्रों की परिपाटी का ही अनुसरण करें तो हमको विविध आश्रमों के लिये अहिंसा के विविध रूप मिलेंगे। गृहस्थ का अहिंसा धर्म संन्यासी के अहिंसा धर्म से बिलकुल पृथक् है। हमारे कांग्रेस के महारथी न पुरानी व्याख्या को ही स्वीकार करेंगे और न कांग्रेस के ध्येय से ही सन्तुष्ट होंगे। वह अपनी निराली व्याख्या ही करना चाहते हैं। और तमाशा यह है कि वह उन सिद्धान्तों को बताने की भी कृपा नहीं करते जिनके आधार पर वह अपना फतवा समय समय पर दिया करते हैं। यदि हम उनके कार्य की ओर दृष्टिपात करें और उसकी सहायता से उनके अहिंसा के सिद्धान्त को समझना चाहें तो भी हमको एक बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कठिनाई यह है कि जिस बात को आज वह अहिंसा संमत कहते हैं उसी को कुछ वर्ष पहले वह हिंसा-द्वेष-मूलक बताया करते थे। उदाहरण के लिये, ब्रिटिश माल के बहिष्कार के प्रश्न को ले लीजिये। कांग्रेस में बराबर इसका यह कहकर विरोध होता रहा कि यह हिंसा और द्वेषमूलक है और इसलिये इसको कांग्रेस के कार्यक्रम में स्थान नहीं मिल सकता। किन्तु आज हम देखते हैं कि ब्रिटिश माल का बहिष्कार एकाएक अहिंसा के सिद्धान्त के अनुकूल माना जाने लगा है। हम

केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि हम राजनैतिक जन्तुओं को ऐसी किसी चीज की जरूरत नहीं है जिसके अनुसार आचरण करना गृहस्थ के लिये संभव न हो।

जब हम यह कहते हैं कि पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने के उपरान्त विधान सम्मेलन (कोंस्टिटुएन्ट असेम्बली) द्वारा एक ऐसा शासन-विधान तैयार किया जावे जो साम्यवाद के सिद्धान्त के अनुकूल हो तो इसमें कांग्रेस के क्रीड का विरोध कहां होता है? देश की नयी व्यवस्था जनता के चुने हुए प्रतिनिधियो की रजामन्दी से की जावेगी और जो परिवर्तन किये जावेंगे वे कानून द्वारा ही होंगे। यदि इनका कोई वर्ग विरोध करेगा तो राज्य का कर्तव्य होगा कि वह विरोध को शान्त करने के लिये उचित उपायों का सहारा ले। यह स्पष्ट ही है कि यह उपाय हर हालत मे अहिंसासम्मत न होंगे। स्वराज्य पाने पर कांग्रेस भी अहिंसक नहीं रहेगी क्योंकि करांची के प्रस्ताव में यह वात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि राष्ट्र की रक्षा के लिये सेना के अलावा एक मिलीशिया भी रहेगी और प्रत्येक नागरिक को युद्ध की शिक्षा दी जावेगी। दूसरे स्थल पर यह भी कहा गया है कि यदि किसी की सम्पत्ति जब्त की जावेगी तो वह कानून के अनुसार ही की जावेगी। इसका आशय यह है कि कानून के अनुसार किया हुआ प्रत्येक कार्य उचित और न्याय्य ठहराया जायगा। यदि ऐसा न हो तो शासन का काम एक दिन भी न चल सके। केवल अराजकता के सिद्धान्त को स्वीकार करनेवाले लोग ही गवर्मेन्ट और कानून की जरूरत को नहीं मानते। किन्तु कांग्रेस के नेता तो अराजक (अनारकिस्ट) नहीं हैं।

फिर यह कैसे कहा जाता है कि हमारे सिद्धान्त कांग्रेस के ध्येय के प्रतिकूल पड़ते हैं।

'लीडर' पत्र ने हमको यह नेक सलाह दी है कि वर्किंग कमेटी

के इस निश्चय के बाद हम लोगों को कांग्रेस से बाहर आ जाना चाहिये। मैं इस बात को तसलीम नहीं करता कि वर्किंग कमेटी को कांग्रेस के ध्येय का मन-माना अर्थ लगाने का अधिकार है। जबतक हम कांग्रेस के ध्येय को स्वीकार करते हैं और उसके अनुसार आचरण करते हैं तबतक हमको कांग्रेस के भीतर रहने का पूरा अधिकार है।

मैंने आरम्भ में ही निवेदन किया था कि वर्किंग कमेटी का जो रुख हम लोगों की ओर है उसको समझने के लिये कांग्रेस की वर्तमान नीति की आलोचना करना आवश्यक है। यह लेख बहुत बड़ा हो गया है। इसलिये अगले लेख में हम कांग्रेस की नीति की आलोचना करेंगे। आज हम इतना कहना पर्याप्त समझते हैं कि कांग्रेस जिस नीति का आज अनुसरण कर रही है वह कांग्रेस के ध्येय की दृष्टि से भी अत्यन्त घातक है। साम्यवाद की कथा तो दूर रही, इस चाल से तो कांग्रेस धीरे धीरे खिसककर नरम दल के ध्येय और कार्यक्रम को स्वीकार कर लेगी। यदि कांग्रेस के कर्णधार हम लोगों को कांग्रेस से निकालना चाहते हैं तो उनको कांग्रेस के ध्येय को बदलवाना चाहिये। यदि कांग्रेस का ध्येय बदल कर उत्तरदायी शासन अथवा डोमिनियन स्टेटस की प्राप्ति हो जावे तो हम स्वयं कांग्रेस से पृथक् हो जावेंगे। उस समय लिबरल भी कांग्रेस में शरीक हो सकेंगे और मध्य-श्रेणी के लोगों को मिलाने की नीति भी सफल हो जावेगी तथा साम्यवाद का भूत जो उनको आज परेशान कर रहा है वह उनका होकर उनको परेशान न कर सकेगा।

फैसिज्म का वास्तविक रूप

[लेखक—आचार्य नरेन्द्रदेव]

पूंजीवाद के ह्रास का युग

पूंजीवाद के लिये ह्रास और अवनति का युग है। यों तो पूंजी-प्रथा मे संकट का काल समय समय पर बराबर उपस्थित होता आया है, क्योंकि ऐसा होना पूंजी-प्रथा के लिये अनिवार्य है, पर जो संकट १९२९ में आरम्भ हुआ, वह जल्द टलता नजर नहीं आता। हो सकता है कि भगीरथ प्रयत्न करने पर सम्पत् की अवस्था कुछ दिनो के लिये फिर लौट आवे, पर अन्त मे इसका फल यही होना है कि निकट भविष्य मे यह संकट और भी भीषण रूप धारण करेगा। उस समय यदि पूंजी-प्रथा के आन्तरिक विरोधो को मिटाने का प्रयत्न न किया गया तो वर्तमान सभ्यता का निश्चय ही अन्त हो जायगा और संसार का एक बड़ा हिस्सा अनिश्चित काल के लिये अंधकार और बर्बरता के खड्डे में जा गिरेगा।

नयी मशीनों की सहायता से पैदावार को अपरिमित रूप से बढ़ाने का खूब मौका मिला। आपस की प्रतिस्पर्धा के कारण मुनाफा कमाने के लिये पूंजीपतियो ने आवश्यकता से अधिक माल तैयार कर दिया। इसका फल यह हुआ कि मशीन का माल नहीं बिक सका और व्यापार में संकट उपस्थित हो गया। कारखानों को बन्द कर देना पड़ा, कारखानेदारों का दिवाला निकल

गया और मजदूरों की बेकारी बढ़ने लगी। कुछ दिनों में गोदामों का भरा माल बिक गया, धीरे धीरे बन्द कारखाने फिर खुलने लगे, मजदूरी बढ़ी और व्यापार फिर तेजी से चलने लगा। किन्तु यह अवस्था बहुत दिनों तक कायम न रही। फिर वही रफ्तार बेढंगी शुरू हुई। प्रत्येक कारखाने में अपरिमित मात्रा में माल तैयार होने लगा। बाजार में मंदी हो गयी। खरीदारों की कमी से माल फिर गोदामों में इकट्ठा होने लगा। यह दौरा बराबर चलता रहा। सम्पत् और विपत् की अवस्थाएं ५–७ वर्ष का अन्तर देकर बराबर उपस्थित होती रहीं।

आर्थिक संकट की दवा समाजवाद

यद्यपि आरम्भ में बड़े पैमाने के व्यवसाय ने ही अबाधित स्पर्धा को जन्म दिया था तथापि अब उसकी आवश्यकता नहीं रह गयी है। व्यवसाय की आवश्यकताओं को बिना बिचारे, उत्पादन की क्रिया को बढ़ाते चले जाने का यही फल है। उत्पादन-शक्ति अब इस दर्जे तक बढ़ गयी है कि पूंजी-प्रथा का उसके साथ सामंजस्य नहीं रह गया है। पूंजीप्रथा में उत्पादन-शक्ति की अब और उन्नति नहीं हो सकती। जबतक बड़े पैमाने का व्यवसाय वर्तमान पद्धति के अनुसार सञ्चालित होता रहेगा तबतक मानव सभ्यता को भय बना रहेगा, मजदूरों का कष्ट बढ़ता रहेगा तथा साथ साथ पूंजीपति भी बरबादी से न बच सकेंगे। दो ही उपाय हैं या तो व्यवसाय की इस नयी पद्धति का अंत कर दिया जाय या समाज की एक नयी व्यवस्था की जाय जिसमें बड़े पैमाने का व्यवसाय फल-फूल सके और अपने आन्तरिक विरोधों से छुटकारा पा सके। जो नयी सामाजिक व्यवस्था होगी, उसमें कारखानेदार न होंगे जो आपस में प्रतिद्वन्दिता करें। उस नयी व्यवस्था में एक

निश्चित योजना के अनुसार तथा समाज के सब सदस्यों की आवश्यकता के अनुसार औद्योगिक उत्पादन होगा। प्रतिद्वन्दिता के स्थान में सहयोग होगा। बिना विचारे व्यक्तिगत लाभ के लिये जो काम दैवाधीन हो रहा है, उसके स्थान में बुद्धि पूर्वक तैयार की हुई एक योजना के अनुसार कार्य होगा। यह व्यवस्था समाजवाद की व्यवस्था है। मानव समाज को दारुण परिणाम से बचाने का यही एकमात्र उपाय है। पूंजीप्रथा विकास की उस चरम सीमा को पहुंच गयी है, जहां वह उत्पादन की वृद्धि मे रुकावट डालती है। पूंजीप्रथा अपना काम समाप्त कर चुकी है, समाज की भावी उन्नति के लिये इस प्रथाका लोप आवश्यक है। पूंजीप्रथा की मर्यादित सीमा के भीतर उन्नति की अब कोई गुंजाइश बाकी नहीं है।

पूंजी और पूंजीपति

अबतक यही समझा जाता रहा है कि यह व्यापार-संकट तथा औद्योगिक शक्तियो का यह प्रपञ्च और अपव्यय अनिवार्य है, क्योकि बाजारो के हेर फेर से तथा अचित्य कारणो के वश अथवा युद्ध, दुष्काल या आर्थिक आपदा से ऐसा होता है। किन्तु अब यह बात स्पष्ट हो गयी है कि व्यवसाय, कृषि, व्यापार, गमनागमन के साधन तथा यंत्रो में जो असाधारण उन्नति हुई है उसके कारण उत्पादन की शक्तियो मे इतनी अधिक वृद्धि हो गयी है कि जितना माल तैयार किया जा सकता है उतना इसलिये नहीं तैयार होता कि वह ऐसी कीमत पर नहीं बेचा जा सकता, जिसमे लागत भी निकल आवे और मुनाफा भी बना रहे। इसीलिये आज अनेक कृत्रिम उपायो से वस्तुओ की कीमत बढ़ाने का उद्योग किया जाता है; कारखाने बन्द कर दिये जाते हैं, मजदूरो को छुट्टी दे दी जाती है, अन्न आदि वस्तुएं नष्ट कर दी जाती है और उत्पादन को नियंत्रित करने के लिये प्रयत्न किये जाते हैं।

इसमे संदेह नहीं कि कुछ राजनीतिज्ञ और अर्थशास्त्री इस गंभीर अवस्था के लिये उन राजनैतिक तथा आर्थिक कठिनाइयों को जिम्मेदार ठहराते हैं, जो युद्ध के बाद पैदा हो गयी हैं। कर्ज का बोझ, टेरिफ-युद्ध, पुराने सुप्रतिष्ठित बाजारों का बन्द हो जाना तथा आत्मनिर्भरता के भाव का प्राबल्य यह सब बातें पूंजीप्रथा के संहार के मुख्य कारण नहीं हैं, किन्तु एक अनिवार्य रोग के ऐसे लक्षण हैं, जो रोग का उद्दीपन करते हैं।

पूंजीपतियों में जो दूरदर्शी हैं वह साफ देखते हैं कि यदि वह अपने मुनाफे को सुरक्षित रखना चाहते हैं, तो उनके लिये सिवाय इसके दूसरा चारा नहीं है कि वह स्वयं योजना के अनुसार राष्ट्र के आर्थिक जीवन का संघटन करें, कम से कम, व्यापार के प्रत्येक क्षेत्र में प्रभावशाली व्यापारियों ने इस बात को मान लिया है कि यदि रोजगार में मुनाफा कमाना है तो उत्पादन की शक्तियों को सीमिति और नियंत्रित करना पड़ेगा। बिना इस सिद्धान्त को सामान्य रूप से स्वीकार किये हुए ही कई व्यवसायों में स्पर्धा को रोकने का प्रबंध किया गया। व्यवसायियो ने आपस में पैदावार तथा कीमत निर्धारित करने के लिये समझौते किये और एक समझौते के आधार पर बाजारो का बँटवारा कर लिया। कभी एक देश के भीतर एक व्यवसाय के विविध कारखानेदार आपस में तसफिया कर लेते थे और कभी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते भी होते थे। अपने वर्ग के स्वार्थों की रक्षा के लिये एक सामान्य नीति का अनुसरण करना पूंजीपतियों के लिये आवश्यक हो गया है किन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं है; क्योंकि बड़े बड़े व्यापारियों के लिये अपने व्यापार पर अपना अक्षुण्ण अधिकार छोड़ना दुष्कर है और सबके लिये राष्ट्रीय आधार पर व्यवसाय योजना की आवश्यकता समझना भी असम्भव है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक स्पर्द्धा

पूंजीपद्धति के अनुसार सङ्गठित राष्ट्रों के लिये व्यवसाय का क्षेत्र दिनपर दिन संकुचित होता जाता है। दुनिया का बंटवारा हो हो गया है। उपनिवेशों में भी व्यवसाय की उन्नति होती जाती है। इससे संसार का बाजार इन औद्योगिक राष्ट्रों के लिये संकुचित होता जाता है। इसलिये जब तक इन राष्ट्रों की स्पर्धा पूर्णरूप से जारी रहती है, तब तक व्यवसाय में मुनाफे पर पूंजी लगाने के लिये अवसर कम होते जाते हैं। यह अवस्था तभी सुधर सकती है, जब एक नये आधार पर प्रमुख पूंजीवादी राष्ट्र संसार के व्यवसाय और बाजार का बँटवारा कर लें। किन्तु पूंजीप्रथा में यह सम्भव नहीं है। अवस्था इसके सर्वथा प्रतिकूल है। संसार का व्यापार जितना ही अधिक सिकुड़ता है, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध जितने ही अधिक अव्यवस्थित होते हैं, उतना ही अधिक विविध राष्ट्र एक आर्थिक युद्ध के लिये अपने को शस्त्रों से सुसज्जित करते जाते हैं। प्रत्येक राष्ट्र अपने आर्थिक जीवन की रक्षा के लिये तैयारी कर रहा है। प्रत्येक राष्ट्र अपने को आत्मनिर्भर करना चाहता है। वह नये बाजार और नये प्रदेश की तलाश में है। वह अपने देश से दूसरों के व्यवसाय को निकालना चाहता है। जिन क्षेत्रों में वह स्वयं पिछड़ा हुआ है उनमें वह उन्नति करना चाहता है। इससे राष्ट्रीयता की भावना को उत्तेजना मिलती है। पूंजीप्रथा की वर्तमान आवश्यकताओं के कारण इस भावना को उत्तेजना देने की जरूरत है। किन्तु यदि प्रत्येक राष्ट्र इस नीति का अनुसरण करे तो अन्तर्राष्ट्रीय अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता और भी बढ़ जावेगी।

फैसिज्म क्या है

वास्तव में पूंजी-प्रथा का कार्य समाप्त हो चुका है। इसने

संसार का बाजार और संसारव्यापी एक आर्थिक पद्धति कायम कर दी है। उसके आन्तरिक विरोध विकसित हो गये हैं अब वह केवल प्रतिक्रिया की पद्धति होकर ही रह सकती है। यही प्रतिक्रिया फैसिज्म है।

संसार की आर्थिक पद्धति का विघटन हो रहा है। राष्ट्र अब आर्थिक युद्ध की तैयारी में लगे हैं। राजनैतिक रूप में उसी का प्रतिफल फैसिज्म है। जब से पूंजीप्रथा का ह्रास होने लगा है, तभी से प्रत्येक पूंजीवादी राष्ट्र में फैसिस्ट आन्दोलन के विकास के लिये कमोवेश अनुकूल अवस्था रही है।

फैसिस्ट राज्य आर्थिक राष्ट्रीयता की ओर झुक रहे हैं। वह व्यवसाय की दृष्टि से स्वतन्त्र होना चाहते हैं। इस मामले में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की उनकी चेष्टा रहती है। इस प्रकार वह संसार की आर्थिक पद्धति को विघटित कर देते हैं। साथ साथ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध भी विघटित हो जाते हैं और संसार का व्यापार नष्ट हो जाता है।

इस पद्धति के द्वारा ही पूंजीवादी देशो का उत्थान हुआ है। इस पद्धति के विनाश से, उनके जीवन का परम आवश्यक आधार नष्ट हो जाता है। इसलिये उनकी प्रतिद्वंदिता और भी भीषण हो जाती है। फैसिज्म के बढ़ने से राष्ट्रों के आपस के विरोध और भी तीव्र हो जावेंगे। जो राष्ट्र आज फैसिस्ट नहीं हैं, उनको भी युद्ध की नीति अपनानी पड़ेगी तथा फैसिज्म की ओर अग्रसर होना पड़ेगा। फैसिज्म में उन्नति के लक्षण नहीं हैं। यह पूंजी-प्रथा के ह्रास और अवनति को और भी बढ़ाता है। पूंजीप्रथा को जीवित रखने की यह अन्तिम चेष्टा है।

इटली में फैसिस्ट पार्टी को अपना अधिनायकत्व जमाने में कुछ साल लग गये थे। पर जर्मनी के नाजी दल ने वही काम

चन्द महीनों में हो कर डाला। जर्मनी के सामने इटली का नमूना तैयार था। जर्मनी में जहां समाजवादी तथा कम्यूनिस्ट दल सुसङ्गठित थे फैसिज्म की स्थापना का एक प्रधान कारण यह रहा है कि वहाँ के पूंजीपतियों ने इस बात की आवश्यकता को महसूस किया कि यदि पूंजीप्रथा को जीवित रखना है तो पूर्व इसके कि समाजवादी समाज की स्थापना करें, उन्हे व्यवसाय योजना का काम अपने हाथ में लेना चाहिये। उनको इसका वास्तविक भय था कि यदि वह ऐसा नहीं करेंगे तो रूस की तरह उनका भी हाल होगा। फैसिस्ट आन्दोलन के मूल आधार मध्यम वर्ग की निम्न श्रेणी के वह लोग हैं जो कङ्गाल हो गये हैं। युद्ध के बाद जो मार्क (जर्मन सिक्का) का भाव गिर गया था, उससे यह लोग तबाह हो गये थे। १९२९ की मन्दी ने इनको और भी बरबाद कर दिया। यही समुदाय फैसिस्ट आन्दोलन का मूल आधार बना।

फैसिज्म का वास्तविक रूप।

जिन राष्ट्रों मे अभी फैसिज्म स्थापित नहीं हुआ है, वहाँ भी फैसिज्म-प्रवृत्ति को उत्तेजना मिली है। इङ्गलैण्ड में मास्ले का गिरोह है। स्विटजरलैण्ड में 'डाइफ्रांटेन' दल है। फ्रांस, बेलजियम स्वीडन आदि देशों मे भी इसी प्रकार के सङ्गठन पाये जाते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका मे रूजवेल्ट की योजना धीरे धीरे फैसिज्म के लिये जमीन तैयार कर रही है।

जर्मनी का नात्सी दल।

इन नवीन विचारों की सफलता देश और काल पर निर्भर करती है। यह छोटे छोटे समुदाय बहुत दिनों तक इसी अवस्था मे रह सकते हैं, पर यदि आर्थिक और सामाजिक अवस्था फैसिज्म के अनुकूल हुई, समाजवादी जनता के विश्वासपात्र न रहे तथा

जनता में एक राष्ट्रवादी अधिनायक की चाह पैदा हुई तो यह छोटे छोटे समुदाय एक वृहत् दल के प्रारम्भक बन सकेंगे।

यह प्रतिक्रिया बहुत दिनों तक चल सकती है, यद्यपि यह भी असन्दिग्ध है कि इसका अन्त समाजवाद करेगा। जर्मनी के फैसिस्ट बहुत मजबूत हैं। उनके पास केवल राजशक्ति के ही सब साधन नहीं हैं, किन्तु प्रचार के भी सब साधन हैं—छापाखाना, कला, विज्ञान, सब तरह के क्लब, असोसियेशन, आर्थिक और सामाजिक सङ्गठन, चर्च इत्यादि। संक्षेप में, समस्त राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवन के सङ्गठित रूप, फैसिस्ट पार्टी को मजबूत बनाने के काम में जानबूझ कर बेदर्दी से लगाये जाते हैं। अन्य दलों का अन्त कर दिया गया है। जनता के पास सङ्गठन के जो साधन थे वह भी छीन लिये गये हैं। उनका सामूहिक जीवन छिन्न भिन्न कर दिया गया है। फैसिस्ट स्टेट में मजदूरों को संभ्रम समुत्थान का अधिकार नहीं है। मजदूरों का कोई स्वतन्त्र सङ्गठन नहीं है। जिन मजदूर सङ्गठनों की इजाजत दे रखी है उनमें मजदूरों को फैसिस्टों ने परस्पर सलाह करने की स्वतन्त्रता नहीं दी है और यह सङ्गठन मजदूरों के नियन्त्रण या प्रभाव में नहीं है। मजदूरों को केवल चन्दा देना पड़ता है। फैसिस्ट पूंजीपतियों से काम के बारे में शर्तें तय करते हैं और पीछे यह घोषणा करते हैं कि यह तसफिया मजदूरों के हित में किया गया है। ऐसी हालत में जब तक एक काफी सुदृढ़ और अनुभवी संङ्गठन प्रस्तुत न होगा तब तक फैसिस्ट शासन का सफल विरोध जर्मनी में नहीं हो सकेगा।

इसके अतिरिक्त आक्रमण का सुअवसर तभी प्राप्त होगा जब फैसिस्ट शासन आन्तरिक तथा बाह्य कठिनाइयों के कारण काफी दुर्बल हो जायगा और जनता उसके विरुद्ध हो जायगी। सङ्कट के

समय अवश्य आवेंगे, बेकारी के घटाने की जो चेष्टा फैसिस्ट कर रहे हैं उससे स्थायी रूप से बेकारी नहीं दूर हो सकती। यदि विदेशी मामलों में फैसिस्ट स्टेट को दिक्कतें पड़ें तो एक महान् सङ्कट उपस्थित हो सकता है। किन्तु इसका उपयोग तभी हो सकता है जब जर्मनी के समाजवादी और कम्यूनिस्ट कार्यकुशलता का परिचय दें और अपनी एक नीति निर्धारित कर समवेत रूप से कार्य करना आरम्भ कर दें।

फैसिज्म का विकास।

फैसिस्ट आन्दोलन के अभ्युत्थान के लिये परिस्थिति अनुकूल थी। संसार के सब भागों मे आर्थिक जीवन अस्तव्यस्त था। राजनीतिक तथा आर्थिक गुटों का संघर्ष तीव्र हो रहा था। राजनीति और व्यापार में पाप बुद्धि बहुत बढ़ गयी थी। मजदूरी गिरती जाती थी। बेकारी बढ़ती जाती थी। नगरों मे रहनेवाले मध्यम श्रेणी के लोगों का जीवन भी संशयापन्न था। किसानो की भी मुसीबत कुछ कम न थी, क्योंकि खेती में संकट की अवस्था भी उपस्थित हो गयी थी। इस सामाजिक संकट के कारण दलबन्दी बढ़ गयी थी। विविध दल राजनीतिक अधिकार और प्रभाव के लिये संघर्ष करते थे, पर इस मुसीबत से छुटकारा पाने का रास्ता कोई भी नही बताता था।

जो शासन पद्धति लोगों को मुसीबत से बचा नहीं सकती, उसके प्रति उनका विद्वेष बढ़ जाता है। भिन्न भिन्न दलो की आपस की लड़ाई से वह तंग आ जाते हैं। लोकतन्त्र शासन उनके विद्वेष का पात्र बन जाता है और वह एक मजबूत आदमी की जरूरत महसूस करने लगते हैं, जो राष्ट्र की ठीक ठीक व्यवस्था करे। लोगों का यह ख्याल होने लगता है कि व्यवसाय, व्यापार, राजस्व की हीन अवस्था, बढ़ती हुई बेकारी, आर्थिक और राजनीतिक

गड़बड़, यह सब लोकतन्त्र शासन की दुर्बलताओं के परिणाम हैं। वास्तव में पूंजी-पद्धति का जो संकट है, वही लोकतन्त्र शासन के लिये जिम्मेदार है।

जब वह देखते हैं कि पूंजी-प्रथा के सूत्र धीरे धीरे थोड़े से गुटों में कन्द्रीभूत होते जाते हैं और पूंजीप्रथा में स्वाधिकार बढ़ता जाता है, जब वह देखते हैं कि बड़े बड़े ट्रस्ट और व्यवसाय के डाइरेक्टरों का व्यक्तिगत प्रभाव वास्तविक है, तब व्ययसाय तथा बंकों के बादशाहों के गुटसे उनमें यह भ्रम फैलता है कि अधिनायकों (डिक्टेटर्स) के द्वारा शायद त्राण सम्भव हो, शायद उनके नेतृत्व में वह संकट की अवस्था को पार कर सकें। यही कारण है कि नात्सियों की पाशविक बर्बरता और अत्याचार को जनताने उपेक्षा की दृष्टि के साथ देखा।

समाजवादी तथा कम्यूनिस्टों की भूल से भी नात्सी दल ने लाभ उठाया। जब जर्मनी में समाजवाद की उन्नति हुई थी, तब समाजवादियो ने अपने शत्रुओं को पूर्ण रूप से पदच्युत नहीं किया था। सेना पर पुराने फौजी लोगों का आधिपत्य था। व्यापार-व्यवसाय पूंजीपतियों के हाथ में था। इसके अतिरिक्त समाजवादी तथा कम्यूनिष्ट दल बराबर आपस में लड़ते रहे। इन्होंने एक साथ मिलकर नात्सियों का मुकाबला नहीं किया।

मालिक की दृष्टि में नौकर बैल के समान ।

नौकरो का पेट काट कर पूंजी जमा की जाती है
इलाज—समाजवाद, संघटन और स्वराज्य

मैं आपके बिचार से बिलकुल सहमत हूँ कि आप लोगों की हालत एकसी ही है, चाहे आप रोजगार में लगे हो। मै ऐसा क्यो समझता हूँ इस बात को भी संक्षेप में आपके सामने रख देना चाहता हूँ। पहली बात तो यह है कि आप लोग 'कर्मचारी' हैं। 'कर्मचारी' तो बड़ा मीठा सा शब्द है। यह नाम सुनने मे आपको अच्छा लगता होगा पर असली बात तो यही है कि आप नौकर हैं। नौकर का ठीक ठीक अर्थ क्या है इस पर लम्बा विचार करना तो अनावश्यक प्रतीत होता है, परन्तु थोड़े मे इसके मानी समझ ही लेना चाहिये। आपके मालिकों को क्या राय है यह तो जाहिर ही है। वह तो आपको इसलिये रखते हैं कि प्रारब्ध ने उनको दो ही आंखें, दो ही हाथ, दो ही पांव दिये हैं। कोई मालिक अपनी एक देह से न सब जगह रह सकता है, न सब काम कर सकता है। इसलिये उसको सहायकों की जरूरत होती है। कपड़े या अनाज का व्यापारी स्टेशन से बैल पर या

बैलगाड़ी पर माल लदवा कर मँगाता है और नौकर के जरिये से उसे बिकवाता है। उसके लिये बैल भी जरूरी है और नौकर भी, और उसकी निगाह में दोनों की हैसियत भी एक सी ही है। यह दूसरी बात है कि आदमी के साथ अनेक कारणों से कुछ सहानुभूति होती है, कुछ जात-बिरादरी, मजहब, कानून का दबाव पड़ता है, कुछ यह डर भी रहता है कि आखिर आदमी की बरदाश्त की हद होती है। इन बातों का अवश्य कुछ प्रभाव पड़ता है लेकिन इनको छोड़कर मालिकों की मनोवृत्ति यही है, चाहे वह उसे साफ साफ खुद भी न समझते हों और साफ शब्दों में कभी भी न कहें, कि उनके लिये काम करने वाला बैल और काम करने वाला नौकर दो आवश्यक मशीनें हैं। उनको इतना तो देना ही पड़ेगा कि वह जीवित रहे और तन्दुरुस्त बने रहे ताकि मालिक का काम कर सकें, अगर वह बीमारी या किसी अन्य कारण से मालिक के काम के न रहे तो वह उन्हें बिना संकोच के बदल या निकाल देगा। जिस तरह मोटरलारी या बैल मालिक के मुनाफे के हकदार नहीं हो सकते उसी तरह नौकर का भी उसमें कोई हिस्सा नहीं है। जो रुपया लगाता है मुनाफे का वही हकदार है, ऐसी मालिकों की धारणा होती है। अफसोस की बात यह है कि प्रायः सारा समाज ऐसा ही मान लेता है। इससे भी ज्यादा अफसोस की यह बात है कि बहुत से कर्मचारी, नौकर भी इस तर्क को मंजूर कर लेते हैं। मेरा कहना यह है कि यह बात गलत है।

नफे में मजदूर का हक

पहले तो यह सवाल उठता है कि जिन मजदूरों ने माल को तैयार किया उनका क्या हक है। पर इस प्रश्न को यहीं छोड़ देता हूँ। दूसरा सवाल जो हमारे लिये यहाँ पर इससे ज्यादा महत्व रखता है वह यह है कि दूकान का मालिक वह रुपया कहाँ से

लाया जिससे उसने माल खरीदा। यदि कोई आदमी अपना पेट काट कर कुछ बचा ले तो वह तो शायद यह कह सकता है कि यह बचत का रुपया मेरा है, पर जो लखपती है, जिसके पास बिना पेट काटे रुपया बचता है, वह तो ऐसा नहो कह सकता। हमको देखना होगा कि यह रुपया कहाँ से आया। इस सवाल का जवाब हमको उस वक्त मिलता है जब हम इस पर गौर करते हैं कि मुनाफा कैसा होता है। मान लीजिये कि किसी दूकान पर मालिक के साथ दो तीन नौकर है। मान लीजिये दूकान पर किसी दिन ५००) का माल खर्च काटकर ५५०) मे बिका। यह ५०) मुनाफा हुआ। अब सोचिये कि ५००) का ५५०) कैसे हो गया। मालिक साहब यदि एक कमरे मे ५००) या ५००) के माल के साथ बन्द कर दिये जायँ तो १ दिन क्या १ युग में भी उस ५००) के लड़के बच्चे नहीं होगे। माल के लिये मांग का होना तो जरूरी है पर खाली मांग से ५००) से ५०१) भी नहीं हो सकता, माल को बेचना होगा अर्थात् उसके साथ मिहनत करनी होगी। यह श्रम ही ५००) को ५५०) मे बदलता है, पर श्रम अकेले मालिक का नहीं है, उसके नौकरों का भी है। इसलिये यह ५०) जो इन सब आदमियों के श्रम से पैदा हुआ है इन सब मे बराबर बँटना चाहिये। हाँ, यदि किसी ने कम किसी ने ज्यादा शरीर या दिमाग से मिहनत की हो तो उसी हिसाब से हिस्से मे कमी-बेशी होनी चाहिये। पर यह बात साफ तरह से समझ लेनी चाहिये कि मुनाफा रुपये मे से नहीं टपका, मिहनत से पैदा हुआ, इसलिये मिहनत करनेवालो का उस पर हक है, रुपया लगाने वाले का नही। वह अपने श्रम मात्र के हिसाब से उसमें हिस्सा पाने का अधिकारी है। पर बटवारा इस तरह होता नही। उस ५०) में से शायद ही कोई नौकर ।।।), १) से ज्यादा पाता होगा क्योंकि शायद ही किसी की तनखाह ३०),

४०) से ज्यादा होती होगी। बाकी ४०), ४५) मालिक की जेब में जाता है और उसका मुनाफा कहलाता है। जो रुपया नौकरों का पेट काटकर जमा होता है उसपर अधिकार उनका नहीं बल्कि मालिक का होता है। उसी रुपये को वह अपनी पूंजी कहता है और इसी से नया माल खरीद कर इसी तरह और मुनाफा बटोरता है। यह बात सभी रोजगारों के लिये लागू है। मालिक लोग एक ओर अपने नौकरो को लूटते हैं, दूसरी ओर सारे समाज के साथ अन्याय करते है। सभी लोगों के दिये हुए टैक्स के रुपये से फौज, पुलिस और अदालत की व्यवस्था होती है और सड़क, रोशनी वगैरह का प्रबन्ध होता है। बिना इन बातों के व्यापार नहीं हो सकता। अतः समाज मुनाफे में हिस्सेदार है पर ऐसा शायद ही कोई दूकानमालिक होगा—मैंने तो आज तक किसी का भी नाम नहीं सुना—जो शौक से समाज के हिस्से के नाते सरकारी इन्कम टैक्स या म्युनिसिपलिटी के टैक्सों को देता है।

थोड़े में इस सारे कहने का तात्पर्य यह है कि जो रकम तनखाह के नाम से आपको दी जाती है वह उससे बहुत कम है जिसको आप पैदा करते है और जो आपको मिलनी चाहिये। इतना ही नहीं, आपको अपनी मिहनत की उचित मजदूरी भी नहीं मिलती और मालिकों को मिहनत से कहीं अधिक मजदूरी मिलती है।

रामराज्य और साम्यवादी

[लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द]

हिन्दू लोग रामचन्द्रजी को मर्यादा पुरुषोत्तम और उनके शासन, रामराज्य, को आदर्श शासन व्यवस्था मानते हैं। रामचन्द्रजी न केवल हिन्दुओ, वरन, समस्त भारतीयो के, गौरव की सामग्री हैं। जो लोग उनको अवतार और उपास्य बुद्धि से नहीं देखते वह भी उनके चरित्र के अनेक अङ्गों को आदर की दृष्टि से देखते हैं। इसमें भी सन्देह नहीं कि रामचन्द्रजी का समय आर्यों के इतिहास का बड़ा ही उज्ज्वल अध्याय रहा होगा। उन्हीं के नेतृत्व मे आर्य-जाति ने दण्डकारण्य निवासी वानर जाति को अपने संरक्षण में लेकर उसकी सहायता से विपुल-बल-वैभवशाली राक्षस साम्राज्य पर विजय पायी थी। रामचन्द्रजी की शासन व्यवस्था भी उस समय के आदर्श और उस समय की परिस्थिति के अनुसार बहुत श्रेष्ठ रही होगी। सम्भवतः हम आज भी उससे बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं और जब भारतीय आधारों का अध्ययन करके भारत का इतिहास विस्तृत रूप से लिखा जायगा उस समय ऐसा कर भी सकेंगे। इतना तो हर निष्पक्ष समझदार मनुष्य मान लेगा। पर कुछ लोगों के लिए इतना पर्याप्त नही है। वे इससे आगे जाते हैं और देश को भी आगे ले जाना चाहते हैं। वे हमको यह बतलाते हैं कि हमको इस समय अपने

देश में रामराज्य स्थापित करना है, उसी को अपना लक्ष्य बनाना है। यह बात केवल ऐसे लोग नहीं कहते जो जगत् गति से अनभिज्ञ हैं, वरन् कभी-कभी ऐसे लोगों के मुँह से भी ऐसी बात निकलती है जिनसे तुलनात्मक राजनीतिक ज्ञान की आशा की जा सकती है।

जब महात्मा जी रामराज्य का ज़िक्र करते हैं तो हमको विशेष चिन्ता नहीं होती; क्योंकि हम अभी तक यही समझते है कि उनकी परिभाषा मे रामराज्य का अर्थ सम्यग्रूपेण सुव्यवस्थित राज्य है। पर, सम्भव है उनके शब्दों को सुनकर कुछ लोगों को यह शंका होती हो कि हम वस्तुतः काल गति को उलट कर श्रीरामकालीन व्यवस्था को पुनः लाना चाहते है। यदि यह शंका किसी को होती है तो भ्रान्तिमूलक है। पर, इस पर विचार करने के पहले हमको यह भी जान लेना चाहिये कि रामराज्य कैसा था। इसको जानने की हमारे पास पर्याप्त सामग्री नहीं है। फिर भी लोगों ने उसका कुछ-न-कुछ चित्रण किया है। अभी हाल में हमने 'कल्याण' में श्री रामदास गौड़ का 'रामराज्य का आदर्श' शीर्षक लेख देखा है। उसमें रामराज्य का स्वरूप दिया गया है। लेख क्या है, गद्य काव्य है। सोने की अटारियाँ, सोने चाँदी के कलश, मूँगों की देहरी, स्फटिक के आँगन, मणियों के दीपक, संगमर्मर के महल— ये चीज़ें तो गली गली में मारी फिरती थीं। नहर और कुओं की जरूरत न थी, समय पर बादल आपही बरस जाते थे। सुन्दर और विस्तृत बाज़ार थे और उनमें अन्न, वस्त्र, परचून आदि सभी प्रकार की दूकानें थीं, जिनमें माल भरा था। पर बिक्री न होती थी। लोग आते थे, और अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार सामान उठा ले जाते थे। कृषक और जुलाहे आदि कारीगर भी बिना दाम लिये ही दूकानदारों के यहाँ अन्न वस्त्रादि पहुँचा जाया करते थे।

यह क्यों ? इसलिये कि लोग उस समय शास्त्रनिष्ठ थे और अपने-अपने वर्ण धर्म्मों का कर्त्तव्य बुद्धि से पालन करते थे। वैश्यो का वर्ण धर्म्म है 'कृषि वाणिज्य गोरक्षण'; इसलिये उनके लिये दूकान लगाना अनिवार्य था। श्रमिक या मजदूर अपने शौक से मजदूरी करता था, 'उसे परिचर्या मे रस आता था,' 'वह मजदूरी लेने को तय्यार न था।' वर्णव्यवस्था की मर्य्यादा का पालन होता था; पर अस्पृश्यता का रोग न था। 'शूद्रो के लिये नदी पर अलग घाट न थे।' 'आजकल के कूपमण्डूक-बुद्धि वाले समझते हैं कि हमने प्रकृति पर प्रभुत्व पा लिया है' पर उस समय इस प्रकार के प्रभुत्व और आजकल जैसे यन्त्रों की आवश्यकता न थी। सभी योगी और सिद्ध पुरुष थे। ऐसा न होता तो हनुमान जी समुद्र कैसे कूद जाते और संजीवनी बूटी कैसे लाते ? ऐसी ही विलक्षण बातों से लेख भरा पड़ा है, यदि यह बाते सच हों, तो फिर यही कहना पड़ेगा, कि रामराज्य सदृश राज्य न हुआ और न होगा। पर यह हमारा दुर्भाग्य है कि बिना पुष्ट प्रमाण के हम इन्हे मानने को तय्यार नही है। प्रमाण-स्वरूप जो 'बाजार रूचिर न बनइ बरनत वस्तु बिनु गथ पाइये' आदि पद्य दिया गया है, उसकी प्रामाणिकता स्वीकार नही की जा सकती। रामराज्य से लाखों वर्ष बाद उत्पन्न हुए किसी हिन्दी कवि की कल्पना इस सम्बन्ध मे कोई ऐतिहासिक मूल्य नही रखती। वाल्मीकि ने, जो रामचन्द्रजी के समकालीन माने जाते है, अयोध्या का जो वर्णन दिया है, उससे तो यह नहीं सिद्ध होता कि 'कृषि गोरक्ष्य वाणिज्यम्' का काम बिना पैसा लिये कोरी कर्तव्य बुद्धि से ही होता था।

मनुस्मृति तो आर्य्य जाति की सबसे प्राचीन और प्रामाणिक स्मृति है और आदिमनु द्वारा सत्युग के आदि मे प्रतिपादित हुई थी। वह तो इस मत का समर्थन नहीं करती कि भिन्न वर्ण वाले

मुफ्त काम करते थे। उससे तथा अन्य स्मृतियों से स्पष्ट है कि लोग दूकानदारी, खेती, परिचर्य्या आदि जीविका के लिये करते थे, इसी लिये यह नियम बनाये गये थे कि आपत्काल में जब अपने साधारण पेशे से काम न चले तो उससे उतरे हुए अमुक-अमुक पेशों से जीविका चलाए, पर अमुक अमुक पेशों में कदापि न जाय। परिचारकों को भृति देने का भी आदेश मिलता है। सूद-ब्याज लेने का भी जिक्र आता है। यह बात कैसे मान ली जाय कि त्रेता के अन्त के समय के लोग सत्ययुग से भी अधिक धार्मिक हो गये थे या, दूसरे शब्दों में, स्मार्त धर्मों का परित्याग कर बैठे थे? ऐसी क्या बात हुई कि षोडश कलायुक्त अवतार श्रीकृष्ण के समय में आर्य्यजाति पतित होकर पुनः स्मार्त धर्मों पर आगयी और मणि-माणिक्य वाली कारीगरी के लिये उस अनार्य मय दानव की शरण लेनी पड़ी? हनुमानजी या अन्य व्यक्ति-विशेष में चाहे जो विभूति रही हो पर सब तो सिद्ध पुरुष नहीं ही रहें होंगे। यदि योगसिद्धि से ही काम चल जाता था तो फिर पुष्पक विमान किस लिये रक्खा गया था? अतः हम रामराज्य के इस कल्पित और युक्ति से असंगत चित्र को स्वीकार नहीं कर सकते। जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं, वह अवश्य अच्छा ज़माना रहा होगा। पर उसका रूप कवि-बुद्धि की इस सृष्टि से बहुत भिन्न था।

पर यह बात और भी स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिये कि रामराज्य का वास्तविक रूप चाहे जैसा रहा हो, चाहे वह गौड़ जी के वर्णन से मिलता-जुलता ही रहा हो, पर हम उसकी पुनः स्थापना के इच्छुक नहीं हैं। गङ्गा को धार को उलटना सम्भव भी नहीं, श्रेयस्कर भी नहीं है। गौड़जी अपने लेख के अन्त में कहते हैं; आज का साम्यवाद रामराज्य के ढङ्गों का अनुकरण करना

तो चाहता है; परन्तु व्यक्तियों के सम्मुख आदर्श रखने वाले और पालन कराने वाले किसी पुरुषोत्तम को वह अभी तक जन्मा न पाया, इसीलिये साम्यवाद से ऊपरी ढंग ढाँचा तो बनता है परन्तु भीतर से व्यक्तियों का विकास होने की किसी वाद में सम्भावना नहीं है। 'वह मूर्ति बना सकता है; परन्तु उसकी प्राण प्रतिष्ठा नहीं कर सकता, उसमें जान नहीं डाल सकता।' इस सारे अवतरण में एकही सत्य बात है और वह व्यङ्ग के रूप मे कही गयी है। हम स्वीकार करते हैं कि साम्यवाद ने अब तक कोई पुरुषोत्तम नहीं जनमाया है। आगे जनमाने का दावा भी नहीं करता। पुरुषोत्तम किसी वाद के द्वारा जन्माये जा सकते हैं, यह बात पुराणकारों को भी नहीं सूझी थी। गौड़जी को स्यात् यह पता नहीं है कि बहुत लोग ऐसा मानते हैं कि आदर्श, चाहे वह पुरुषोत्तम का आदर्श हो या किसी अन्य वस्तु का, कभी भी मूर्त नहीं होता। इसलिए वह रामचन्द्रजी की बालि-बध आदि लीलाओं को आदर्शच्युत देखकर उनको भी पुरुषोत्तम मानने को तय्यार नहीं है। फिर जब प्राचीन पद्धति समूचा सत्युग और प्रायः समूचा त्रेता अर्थात् लगभग ३०,२४,००० (तीस लाख चौबीस हज़ार) वर्ष में एक पुरुषोत्तम जन्मा पायी तो साम्यवाद तो अभी नवजात शिशु है, उसे घबराने की कोई बात नही है। भवभूति के शब्दों में 'कालोह्यनन्तो, विपुलाश्च पृथिवी'। रहा अवतरण का मूल वक्तव्य कि 'साम्यवाद रामराज्य के ढंगों का अनुकरण करना चाहता है', यह बात ग़लत है। हमारी तो धारणा है कि रामराज्य का चित्र खींचने में साम्य-वादी सिद्धान्तो से सहायता लेने का प्रयत्न किया गया है। जो कुछ हो, यदि रामराज्य का अर्थ सुव्यवस्था, सब व्यक्तियों का स्व-स्व कर्त्तव्यपालन, समृद्धि, अनुचित प्रतियोगिता का अभाव, सब की उचित आवश्यकताओं की पूर्ति, सहयोग और शान्ति हो तो

साम्यवाद को यह कहने में लज्जा नहीं है कि वह रामराज्य चाहता है। पर वह वस्तुस्थिति को भुला नहीं सकता। त्रेता में लोग योगी रहे हों या न रहे हों और घर-घर मणिदीप जलते हों या न जलते हों पर आज तो न सब योगी हैं न किसी के पास मणि है। अतः हमको यन्त्रों से काम लेना ही होगा और वह भी इस तरह जैसे कि त्रेता वाले न कर सके। हमको यंत्रों का दानवीय नहीं, मानवीय ढंग से उपयोग करना होगा। उनका दानवीय उपयोग पूँजीपति कर रहे हैं, साम्यवादी उनको मानवीय बनाना चाहते हैं। साम्यवादी भी चाहते हैं कि लोगों में धर्म्मबुद्धि, कर्तव्यबुद्धि, जागरित हो। लोग अपनी अपनी वृत्ति का पालन लोकसंग्रह भाव से करें, पर वह कोरी कल्पना के क्षेत्र में नहीं विचरता। तर्क से काम लेता है और मनोविज्ञान को तर्क का आधार बनाता है। जब सब लोग स्वार्थबुद्धि त्याग कर केवल शुद्ध कार्य्यमिति भाव से प्रेरित होकर काम करने लग जायँगे, उस समय सारी सम्पत्ति समष्टि की, उसे राज कहिये या समाज, आपही हो जायगी। गौड़जी के रामराज्य में भी 'सब सम्पत्ति समाज की थी।' ऐसे निःस्वार्थी कर्तव्य-निष्ठ व्यक्ति पृथक् सम्पत्ति और पृथक् व्यवसाय के झगड़े में क्यों पड़ेंगे? फिर पृथक् खेत और पृथक् दूकानों की ही क्या आवश्यकता रह जायगी? सब खेत समाज के, सब कारखाने समाज के, सब भण्डार समाज के, सब अपनी शक्ति भर श्रम करें, सब आवश्यकता भर भोग करें। यही तो साम्यवाद का सिद्धान्त है, पर उस समय रामराज्य में यह बात न थी। साम्यवादी दायविधान को निरर्थक और अनावश्यक बना देना चाहता है। न निजी सम्पत्ति, न बेटों के लिए छोड़ने की आवश्यकता। पर रामराज्य में दायविधान भी चालू था और समाज का संगठन भी निजी सम्पत्ति के आधार पर था। एक ओर निजी सम्पत्ति थी,

दूसरी ओर समाज ने इस साम्यवादी सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया था कि प्रत्येक नागरिक का भरण-पोषण राज का अनिवार्य कर्तव्य है। इसीलिये याचक भी मिल जाते थे। हम यह मानने को तैयार हैं कि लोग दान देने में बड़ी उदारता दिखलाते रहे होंगे, पर दान देना रोग का उपचार है, उसकी जड़ को नहीं काटता। हम जानते हैं कि उस प्राचीनकाल में वर्ण व्यवस्था ने वह निन्दनीय रूप धारण नहीं किया था जो आज हमारे सामने है। पर उसमें विद्वेष और असहिष्णुता का समावेश हो गया था। तपस्या का मार्ग दैत्य, दानव, राक्षस तक के लिए खुला था पर उस पर पाँव धरने के अपराध में पुरुषोत्तम ने अपने हाथों शूद्र मुनि का बध कर डाला। साम्यवाद ऐसी बात को बर्दाश्त नहीं कर सकता। वह किसी जप तप का आदेश नहीं करता; पर यह नहीं मान सकता कि यदि तप अच्छी बात है तो एक व्यक्ति को उसका अधिकार है, दूसरे को नहीं। प्रसङ्गतः, इस कथा से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि शूद्र लोग डण्डे के भय से परिचर्या करते थे, परिचर्या के रस से नहीं।

इस संक्षिप्त निरूपण से साम्यवादी की स्थिति साफ़ हो जाती है। रामराज्य अपने समय के लिए स्यात् अच्छा रहा हो और उसमें कुछ बहुत ही अच्छी बातें रही हों, पर साम्यवाद का सिद्धांत उससे अधिक उदार, कम-से-कम बहुत से अंशों में भिन्न आधारों पर निर्मित है और इस समय के लिए वही उपयुक्त है। साम्यवादी रामराज्य नहीं, साम्यवादी शासन चाहता है।

राष्ट्रीयता के अतिवाद से हानि।

[ले०—श्री सम्पूर्णानन्द]

साम्यवाद के विरुद्ध यह बहुत बड़ा आरोप है, कि वह अन्ताराष्ट्रीयता के भाव को जगाता और राष्ट्रीयता के भाव को दबाता है। यदि यह बात केवल वस्तुस्थिति के वर्णन के रूप में कही जाय तो किसी भी साम्यवादी को शिकायत न होनी चाहिये क्योंकि बात सत्य है; पर यदि आरोप की सूरत में उपस्थित की जाय तो अधिक विचार करने की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। अन्ताराष्ट्रीयता कोई लज्जित होने की बात नहीं है, और न उसका प्रचार करना कोई बुरी बात है। पुराना और सर्वमान्य शास्त्र वचन है—

अयंनिजः परो वेति, गणना लघुचेतसाम्
उदार चरितानान्तु, वसुधैव कुटुम्बकम्।

यदि साम्यवाद मानव जाति से लोभ, प्रतिस्पर्द्धा, द्वेष, ममत्व, परस्वापहरण आदि प्रवृत्तियों को तनु करके मनुष्यों को लघुचेतस से उदार चरित्र बनाना चाहता है तो वह शास्त्रानुमोदित कर्तव्य का पालन करता है। उसके स्वसम्मत उपाय सबको पसन्द हों या न हों; पर उसके उद्देश्य तो सर्वसम्मत होने चाहिये। पर जो लोग

साम्यवाद पर आक्षेप करते हैं उनकी शिकायत दूसरी ही है। उनका कहना है कि साम्यवाद के प्रसाद से जो अन्तर्राष्ट्रीय वृत्ति उत्पन्न होती है वह पराजय स्वरूपा होती है, और आत्मोत्सर्ग भाव को मार डालती है। उनके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीयता यह सिखलाती है, कि चाहे कोई विदेशी अपने राष्ट्र पर आक्रमण करे या अत्याचार करे संस्कृति और सभ्यता को नष्ट कर दे, या कोई प्रबल शक्ति किसी दुर्बल राष्ट्र पर अत्याचार करने को उद्यत हो पर किसी दशा में भी विरोध न किया जाय। यह ख़याल ग़लत है। यदि अन्तर्राष्ट्रीयता यह सिखलाती तो वह कब की आत्महत्या कर चुकी होती। रूस मे साम्यवाद का व्यावहारिक प्रयोग होरहा है पर रूस ने अपनी सेना को बर्खास्त करने के बदले सुसंयत और सुसज्जित बना रक्खा है। यदि उसकी सीमा को कोई भी विदेशी शक्ति अतिक्रमण करने का दुष्प्रयास करेगी तो उसका मुकाबिला करने में रूस न चूकेगा। साम्यवादी सर्कार की स्थापना के बाद चार वर्ष तक साम्यवादी रूस ने राष्ट्रवादी ब्रिटेन और उसके मित्रो के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष आक्रमण का सामना किया था। अतः यह कहना ग़लत है, कि अन्तर्राष्ट्रीयता विरोधियो के सामने हर हालत में सिर झुकाना सिखाती है। ऐसा करने से तो अन्तर्राष्ट्रीयता का नाश हो जायगा। अन्तर्राष्ट्रीयता की स्थापना और उसकी रक्षा के लिये युद्ध और आत्मोत्सर्ग करने की आवश्यकता पड़ेगी। हाँ, यह हो सकता है, कि एक ऐसा दिन आ जाय, कि पृथ्वी के सभी राष्ट्र उन्नत विचारशील हो जाँय, तब युद्ध की ज़रूरत न रह जाय। आत्मोत्सर्ग का अवसर तब भी रहेगा। साम्यवाद का ठीक ठीक प्रचार तब तक नही हो सकता, जब तक एक राष्ट्र दूसरे को राजनीतिक गुलाम बना कर उसका आर्थिक रक्तशोषण करता है। इसलिये साम्यवाद पराधीन जातियो मे राष्ट्रीय भाव को भी

प्रोत्साहित करना बुरा नहीं समझता। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर रूस ने चीन, फ़ारस और तुर्की की सहायता की थी। आज भारत पराधीन है। भारतीय साम्यवादी यह खूब जानते हैं कि जब तक देश स्वतन्त्र न होगा तब तक उसमें साम्यवाद का भी प्रयोग नहीं हो सकता। स्वतन्त्र भारत सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता का दृढ़ स्तम्भ हो सकता है, परन्तु परतन्त्र भारत साम्यवाद की प्रगति का भी अवरोधक है। बलवान राष्ट्रों की शक्ति को बढ़ाने वाले भारत जैसे गुलाम देश साम्राज्यवाद के प्रबल समर्थक और उसी अंश में, साम्यवाद के प्रबल शत्रु हैं। इसीलिये भारत के साम्यवादी राष्ट्रीयता के भाव को आह्वान करते हैं और स्वाधीनता के युद्ध में सम्मिलित होने को तत्पर हैं। कांग्रेस-साम्यवादी दल का इस उद्देश्य को लेकर जन्म हुआ है। राष्ट्रीयता को साधन बना कर ही साम्राज्यवाद के गढ़ का ध्वंस किया जा सकता है और सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता स्थापित की जा सकती है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि मनुष्य शब्दों का दास न बन कर वास्तविक परिस्थिति को समझे और उसके अनुसार काम करे।

अन्तर्राष्ट्रीयता की नींव है परस्पर सहयोग और बिना सहयोग के मनुष्य का कल्याण हो नहीं सकता। आज इस सहयोग का स्थान द्वन्द्व और स्पर्धा ने, स्वार्थ और लोभ ने ले लिया है। उसीका यह फल है कि आये दिन भयंकर युद्ध होते हैं और युद्ध की आशंका तो नित्य बनी रहती है। जितना रुपया हवाई जहाज़, सैनिक बेड़े, तोप, किले, गोला-बारूद आदि को ठीक रखने मे व्यय होता है उससे तो राष्ट्रों का सांस्कृतिक कायापलट किया जा सकता है। जितने मनुष्य सैनिक बनाकर बेकार कर दिये जाते हैं वह अपने अपने देश की, अचल पृथ्वी मात्र की, उपयोगी सेवा कर सकते

हैं। ज़कात की दीवारें खड़ी कर दी गई हैं और जिन लोगों को अन्नवस्त्रादि की आवश्यकता है उनके पास तक सस्ती चीज़ें पहुँचने नहीं पातीं। यह झूठा स्वदेशी भाव फैला दिया गया है कि प्रत्येक देश को अपने काम की प्रत्येक चीज अपने यहाँ पैदा करनी चाहिये, चाहे अपने पास उपयुक्त प्राकृतिक साधन हो या न हों ? इसीसे साम्राज्यवाद और दुर्बल-शोषण का उदय होता है। इसीसे युद्ध होते हैं, और देशभक्ति का धोखा देकर करोड़ों निरपराध गरीब, जिनको युद्ध और विजय से कोई लाभ नहीं हो सकता, बलि चढ़ा दिये जाते है। ग़रीब ग़रीब ही रह जाते हैं पर पूँजीपतियो के जेब मे थैलियाँ भर जाती हैं। तेल, कोयला, लोहा अब बनते नहीं। यह मनुष्य मात्र की सम्पत्ति है, पर आज हम इन्हे खोद-खोद कर लुटाये दे रहे हैं। हमें इसकी चिन्ता नहीं है कि कल हमारे वंशजो का काम कैसे चलेगा। होना यह चाहिये था, कि सब के हित को ध्यान मे रखकर इनका उपयोग होता। होना यह चाहिये था, कि जिस वस्तु के उत्पादन की जहाँ सुविधा होती वह वहीं तैयार की जाती और सब राष्ट्रों मे आवश्यकतानुसार उसका वितरण होता। होना यह चाहिए था कि शान्ति भङ्ग करने वाला सबका शत्रु समझा जाता और विश्व लोकमत उसे दण्ड देता। यही साम्यवाद की अन्तर्राष्ट्रीयता है। साम्यवाद श्रमिकों को—यह स्मरण रहे कि यह शब्द व्यापक है। जो लोग उत्पादक है, ईमानदारी से परिश्रम करके खाते हैं वह सभी श्रमिक है—बतलाता है कि तुम्हारा हित परस्पर सहयोग मे है। तुम अपने साम्राज्यवादी पूंजीपति मालिको की स्वार्थसिद्धि के उपकरण मत बनो। झूठे आवेश मे आकर उनकी लड़ाइयो मे प्राण देकर उनके बल को न बढ़ाओ क्योकि इसमें तुम्हारी और तुम्हारे सन्तान की प्रत्यक्ष हानि है। यह उपदेश आजकल की सरकार को, जो पूंजी-

पतियों की कठपुतलियाँ हैं, बुरा लगता है, इसलिए वह साम्यवादियों को पराजयवादी, अन्तर्राष्ट्रीय, और देशद्रोही कहते है।

राष्ट्रीयता पर बहुत जोर देने के जो परिणाम होते हैं वह हमारे सामने हैं। प्रत्येक राष्ट्र अपने नागरिकों को यही शिक्षा देता है कि अपने देश के हित को देखो और यह भी सिखलाता है कि और लोग तुम्हारे हित के शत्रु हैं अतः तुम्हें उनसे सावधान रहना चाहिए। बालकों के कोमल हृदयों पर द्वेष का चित्र दृढ़ाङ्कित कर दिया जाता है। सब सब के शत्रु हैं और यह समझते हैं कि दूसरे हमारे स्वत्वों को हड़प लेने के लिए मुँह फैलाए बैठे हैं। इस घातक परिस्थिति में मनुष्य का कल्याण कदापि नहीं हो सकता। इसी का एक विकृत रूप प्रान्तीयता है जिसका प्रत्यक्ष फल हम देख रहे हैं। भारत एक देश, एक राष्ट्र है यह बात तो देर से समझ मे आती है, भारत के हित भी देर से समझ में आते हैं, पर प्रान्तीयता व्यापक है। बङ्गाली, पंजाबी, गुजराती, मराठा, यह केवल भौगोलिक नाम नही है। इनके साथ गम्भीर भावावेश सन्लग्न है। उत्सवों मे, प्रीति सम्मेलनो मे, नौकरियों में, सर्वत्र इनका ध्यान रहता है। राजनीति के क्षेत्र में भी इसका गहरा प्रभाव है। गुजराती अङ्गरेज के अधीन रहना स्वीकार कर लेगा पर मराठे की मातहती कबूल नहीं कर सकता। बिहारी बङ्गाली से चिढ़ता है, बङ्गाली मारवाड़ी को विदेशी मानता है। जो लोग अपने को महाराष्ट्र के नाम के सच्चे भक्त समझते है, वह महात्माजी तक का नेतृत्व मानने को तैयार नही हैं, क्योंकि वह गुजराती हैं। नए सुधार और तो चाहे जो कुछ करें प्रान्तीय स्वाधीनता को बढ़ायेंगे। इसका अर्थ यह है कि प्रान्तीयता, प्रान्तीय विद्वेष को और प्रोत्साहन और विकास का अवसर मिलेगा। वह एक प्रकार से वही परिणाम पैदा कर सकती है जो अन्यत्र राष्ट्रीयता के अत्याचार से उत्पन्न हो रहे हैं

ऐसी अवस्था में साम्यवाद और सच्ची राष्ट्रीयता की, जो सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता के आधार पर ही स्थित हो सकती है, और भी आवश्यकता है अन्यथा भारत की शक्ति केन्द्रीभूत न हो सकेगी और वह न राष्ट्रीयता के काम का रह जायगा न अन्तर्राष्ट्रीयता के।

साम्यवाद से अनभिज्ञता या चिढ़।

[लेखक—श्रीयुत दामोदर स्वरूप सेठ]

हमारे परम मित्र और विद्वान् देशभक्त श्री नरदेवजी शास्त्री 'वेदतीर्थ' ने गत २० जून के 'अर्जुन' में 'साम्यवाद ! परधर्मो भयावह:' शीर्षक एक लेख लिखा है। मैंने शास्त्रीजी के लेख को कई बार बड़े ध्यान पूर्वक पढ़ा; परन्तु जितनी बार मैं उसे पढ़ता गया, उतना ही मेरा यह सन्देह बढ़ता गया कि क्या यह लेख शास्त्री जी ही की ज़बरदस्त लेखनी से निकला है ? अनेक बार पढ़ने पर भी मुझे इस लेख मे 'साम्यवाद' के विरुद्ध कोई जबरदस्त दलील ही न मिली, बल्कि जिस तर्क का इस लेख मे प्रयोग किया गया है वह बड़ा कमज़ोर है और यदि मैं यह कहूँ कि यह तर्क है ही नहीं, तो शास्त्रीजी इस साफगोई केलिये मुझे क्षमा करेंगे। इसका कारण शास्त्री जी के लेख से ही प्रकट हो गया और वह यह कि शायद शास्त्री जी को देश तथा धर्म के अनेक कठिन कार्यों मे फँसे रहने

के कारण 'साम्यवाद' और विशेष कर 'वैज्ञानिक साम्यवाद' के अध्ययन करने का समय ही नहीं प्राप्त हो सका—और न आजकल के हिन्दी दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों में देश के विद्वान् लेखकों के लेखों को पढ़ने का सुअवसर ही मिला। एक बात और हो सकती है, कि शायद शास्त्री जी किसी कारण 'साम्यवाद' शब्द से ही इतने अप्रसन्न हो गये हों, कि उन्होंने इस शब्द के असली अर्थ को, इस विषय के अध्ययन की आवश्यकता ही न समझी हो, ख़ैर जो कुछ भी हो। मेरी आत्मा इस दूसरे कारण को मानने के लिए तैयार नहीं है; क्योंकि मै शास्त्रीजी से बहुत कुछ परिचित हूँ। वह बड़े उदार-हृदय विद्वान् है और उनके विचार भी इतने अधिक संकुचित नहीं हो सकते, कि वह किसी शब्द से इतना चिढ़ बैठें; इसलिए मेरी समझ मे शास्त्रीजी के इस लेख की जड़ में सम्भवतः पहला ही कारण है। शास्त्रीजी का लेख 'साम्य-वाद' के गहरे अध्ययन पर निर्भर नहीं; निर्भर है इस विषय से अपरिचित लोगों के मुँह से सुनी-सुनाई बातों पर। जब कभी शास्त्री जी समय निकाल कर इस विषय का अध्ययन करेंगे, तो उन्हें सहज मे पता लग जायगा कि 'साम्यवाद' का अर्थ न तो यह है—सब नाप-तोल कर बराबर एक रंग तथा एक नाप का पहिन और एक प्रकार का और बराबर भोजन किया करें। साम्यवाद का अर्थ है, कि प्रत्येक मेहनत करने वाले को उसकी आवश्यकता के अनु-सार अन्न और वस्त्र मिले। शिक्षा प्राप्ति, स्वास्थ्य सुधार तथा जीवन को सुफल बनाने की अन्य सुविधाएँ प्रत्येक स्त्री-पुरुष को समान प्राप्त हों। हर कुटुम्ब और व्यक्ति को उसकी आवश्यकता के अनुसार भूमि भी मिले। धन की उत्पत्ति, बटवारे और तबादले के साधनों पर समाज का, न कि व्यक्ति विशेष या थोड़े से व्यक्तियों र अधिकार रहे।

जब शास्त्रीजी गम्भीरता पूर्वक विचार करेंगे, तो उन्हे तत्काल ज्ञात हो जायगा कि समाज के वर्तमान ढांचे में थोड़े से लोगों को जो सुविधाएँ प्राप्त है वह सर्व-साधारण को नही हैं। साम्यवाद निस्सन्देह ऐसे ढांचे को तोड़-फोड़ कर उसके स्थान पर एक ऐसा ढाँचा बनाना चाहता है कि जिससे प्रत्येक मेहनत करनेवाले व्यक्ति को उसकी मेहनत का पूरा फल मिले।

साम्यवाद किसी का घातक नही है और न किसी का वह क्षय ही चाहता है। पर हाँ, यदि किसी के सुधार का नाम है, उसका क्षय या नाश, तो फिर बात दूसरी ही है। जब साम्यवाद समाज के सर्व-साधारण को जीवन सुफल बनाने की पूरी-पूरी सुविधाएं देना चाहता है, तो वह निश्चय ही उस विशेष श्रेणी के लोगों के अधिकारों में कमी करता है, जो सर्व-साधारण के अधिकारो को हड़प किये बैठे हैं। समाज के वर्तमान संगठन मे क्या कोई भी न्याय-प्रिय व्यक्ति यह कह सकता है, कि एक छोटी-सी श्रेणी के लोगो ने देश की मेहनत मज़दूरी करने वाले और किसानों के अधिकारो को हड़प नही कर लिया है—क्या शास्त्रीजी से यह बात छिपी है कि जमीन्दारी प्रथा से समाज की नाम-मात्र को भी सेवा नही होती; पर जमीन्दार ज़मीन पर कड़ी-से-कड़ी मशक्कत करने वाले किसान का खून चूस लेता है। क्या शास्त्रीजी से यह भी छिपा है, कि एक मिल-मालिक दिन रात मेहनत करने वाले मज़दूर की मेहनत से करोड़ो रुपयों का लाभ उठाता है, वह उस धन को अनेक प्रकार से समाज और देश के अहित के लिए अपव्यय करता है। पर, मेहनत करने वाले को न पेट भर खाना मिलता है, न तन ढकने को कपड़ा। निवास-स्थान तो कहीं-कहीं मिल-मालिकों के अस्तबलो से भी गये गुज़रे होते हैं। निशिवासर मिल मे करोड़ों रुपया पैदा करने वाला मज़दूर न शुद्ध जल पा

सकता है और न पवित्र वायु, बीमारी में उसको तथा उसके बी-बच्चो की न कोई दवादारू करने वाला है और न तीमारदारी। पढ़ाई-लिखाई, खेल-कूद और मनो-विनोद की बातों का जिक्र ही क्या? समाज की जो श्रेणी इन तमाम मुसीबतों का प्रधान कारण है, उसका इस प्रकार प्रबंध करना, कि वह ऐसा कारण न पैदा कर सके—कोई पाप है? यदि शरीर से सड़े हुए रोगी अङ्ग को काट डालना बुरा, बुरा नहीं, बहुत भला है, तो समाज का वह अङ्ग जो धनी, जमीन्दार या पूँजीपति के नाम से पुकारा जाता है और जो समाज की किसी प्रकार सेवा तो नहीं करता, बल्कि उसकी उन्नति को रोकता है, उसमें आलस्य, व्यभिचार, अन्याय और अत्याचार के भयंकर रोग उत्पन्न करता है, क्या समूल काट डालने योग्य नहीं है? यदि एक अङ्ग के काट डालने से सारा शरीर स्वस्थ हो जाता है, तो उस अङ्ग के नाश या क्षय से किसी को दुःख होगा? बहुत से लोगों के लाभ के लिए थोड़े से लोगों का बलिदान सदा ही एक पुण्य कार्य माना गया है। फिर जैसा ऊपर कहा गया है, साम्यवाद पूँजीपतियों का नाश भी नहीं चाहता, वह केवल उनसे वह अधिकार और ताक़त छीन लेता है जो मनुष्य-समाज के बहुत अधिक व्यक्तियो पर जुल्म और सितम के पहाड़ तोड़ता है। वह उन्हें समाज में बराबर का दर्जा देता है, सबको भाई और सहयोगी बनाता है, मालिक, आक़ा या हाक़िम नहीं। अब रहा शास्त्रीजी का यह तर्क कि साम्यवाद थोड़े से आंग्ल-शिक्षित लोगों की पुकार है, जब साधारण तथा जिनको अभी अंग्रेजी की गन्ध भी नहीं लगी, उनकी समझ मे यह अभी नहीं आ रहा है कि यह साम्यवाद कैसा है। शास्त्रीजी का यह तर्क ऐसा ही है, जैसा हमारी गोरी सरकार का। अब तक वह भी यही कहती रही है कि देश की जनता तथा बे-पढ़े लिखे लोग स्वराज्य नहीं चाहते—यह तो

थोड़े से अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे लोगों के दिमाग की खराबी है। बे-पढ़े लिखे लोग चाहे साम्यवाद शब्द का प्रयोग भले ही न करते हों; पर क्या शास्त्रीजी अपनी छाती पर हाथ रखकर यह कह सकते हैं कि यह बे-पढ़े लोग दिन रात जमीन्दारो, महाजनो और पूँजीपतियो के अन्याय और अत्याचार से दम नहीं तोड़ रहे हैं। अब रही अन्दर के साम्यवाद और सब के अन्दर एक-सी आत्मा होने की बात। यह सब संसार को तथा अपने आपको धोखा देने का तर्क है और कुछ नहीं। जब दिन रात हम अपनी आंखों के सामने थोड़े से लोगो को अपने से करोड़ गुना लोगो का खून चूसते देखते हैं, तो फिर सबके अन्दर एक-सी आत्मा की बात कहना मज़ाक से अधिक महत्व नहीं रखती। हज़ारो वर्षों से देश में ऐसा प्रचार होता आया है और करने वाले अब भी करते हैं, फिर भी धनियो ने न तो अत्याचार बन्द किये और न गरीबो के दुःख ही दूर हो सके और न ऐसा होने की भविष्य में ही आशा है। प्राचीन समय अब लौट नहीं सकता। संसार का विकास इस समय दूसरी ओर और दूसरे ढंग पर हो रहा है। रोग अब पैदा हुआ है, हज़ारो वर्षों की पुरानी औषधि से काम नहीं चल सकता। आज से हज़ार वर्ष पहले देश की यह दशा नहीं थी। उस समय साम्यवाद की न आवश्यकता ही थी और न वह फैल ही सकता था। आज की दुनिया दूसरी है, आज मशीन युग है और उसका इलाज है साम्यवाद। असली—नकली नहीं।

शास्त्रीजी ने साम्यवाद पर जो सब से बड़ा आक्षेप किया है, वह यह है कि मज़दूर किसानों के राज्य की बात कह रहे हैं वह, जिनको ग्रामों तक जाने का अवकाश नहीं, जिनको मोटर सरता नहीं, होटलो के बिना भोजन अच्छा नहीं प्रकार का तर्क करते हुए शास्त्रीजी इस बात को

वर्तमान संसार का विकास किस ढंग से हो रहा है। ऊपर कहा जा चुका है कि आजकल मशीन युग है, इस समय अतीत को लौटाने की बात असम्भव को सम्भव बनाने का प्रयत्न ही समझा जा सकता है। इस मशीन युग में बैल गाड़ी और पुरानी चाल की सवारियाँ रेल और मोटरों का मुकाबला कैसे कर सकती हैं। इस सत्य का प्रमाण यह है कि मशीन-युग के सब से बड़े विरोधी महात्मा गांधी को भी रेल और मोटरों का सहारा लेना ही पड़ता है। शास्त्रीजी भी शायद, अगर हमेशा नहीं तो जब मिल सके मोटर से सफर करने को पाप नहीं समझते। होटलों में खाने का तर्क भी इसी प्रकार का तर्क है। संसार में industrialism 'इन्डस्ट्रियलिज्म' जिस शीघ्रता से बढ़ रहा है, उससे तो ऐसा जान पड़ता है कि घर-घर में खाना पकाने की अपेक्षा लोगों को होटलों में भोजन करने में अधिक सुविधा रहेगी। बड़े बड़े शहरों में भी सैकड़ों व्यक्ति, जिसमें विद्यार्थी लोग और सरकारी मुलाज़िम विशेष कर होटलों में भोजन करने में अधिक सुविधा अनुभव करते हैं। होटलों की संख्या भी देश में दिन प्रतिदिन बढ़ रही है। और अनेक बड़े शहरो मे मज़दूरों को भी होटलों में खाने में सुविधा रहती है। कहने का प्रयोजन यह है कि होटलों में भोजन करना और मोटरों पर चढ़ना, केवल साम्यवाद के प्रचारकों ही के हिस्से में नहीं आया है—यह तो समय की गति है और इन बातों के विरोधी भी इन चीजों का सहारा लेने को बाध्य हो रहे हैं।

एक बात और रह गयी है और वह यह कि साम्यवाद के प्रचारकों को ग्रामों में जाने का अवकाश ही नहीं मिलता, इसके सम्बन्ध में इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि किसी दल के नेता उस दल का सारा कार्यक्रम स्वयं ही पूरा नहीं किया करते हैं। राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओ में से अनेक ने तो

कभी ग्रामों के अन्दर प्रवेश भी नहीं किया होगा। पर साम्यवादी विचार के लोग ग्रामों में नहीं जाते हैं, यह एक वृथा दोषारोपण है। रहा मज़दूरों का संगठन, उसकी ओर तो अभी कांग्रेस ने ध्यान भी नहीं दिया है, जो कुछ थोड़ा-बहुत संगठन हो पाया है, उसका श्रेय साम्यवादियों ही को प्राप्त है।

सम्यवाद के समालोचकों को जवाब।

(लेखक—श्रीयुत गोविन्दसहाय बी० कॉम)

'जवाहरलाल (क्लासवार) श्रेणी-युद्ध करवाना चाहता है। साम्यवादियो के प्रोग्राम से देश में अव्यवस्था मच जायगी। साम्यवादी सिद्धान्त इतिहास और भारत की संस्कृति के प्रतिकूल है। भारत के एक राष्ट्र बनने के लिए ये घातक हैं।' इस प्रकार की आवाजें आज देश मे राष्ट्रीय आन्दोलन के शिथिल पड़ जाने के कारण उठ रही हैं। इनका उठना स्वाभाविक है। शिथिलता अथवा प्रतिक्रिया के युग में ही विचारों का मथन प्रारम्भ होता है। और इस मथन, तर्क और विचार विनिमय के द्वारा नवीन सिद्धान्तो व साधनों का उदय होता है। जो विचार समालोचना व तर्क से डरते हैं, वे परीक्षा के समय ठहर नहीं

सकते। टीका-टिप्पणी होना ही विचारों की सचाई का पता देते हैं। अतएव इस प्रकार के तर्कों व घबराहटों में ही साम्यवाद के सिद्धान्तों की विजय छिपी हुई है। इन्हें समझने के लिये हमें पहले विरोधियों की दलीलों व साधनों को जान लेना हितकर है।

श्रेणी-युद्ध कौन करा रहा है?

कोई माने या न माने, या देखकर भी आँख मीच ले, पर यह कौन नहीं जानता कि वर्तमान सामाजिक सङ्गठन पर एक विशेष वर्ग का पूर्णाधिपत्य है। उत्पादन के तमाम साधनो पर उनका ही अधिकार है। धर्म, न्याय, विज्ञान आदि सभी सांसारिक उपयोगी वस्तुओं की कुंजी इस वर्ग के हाथ में है। सरकार भी इसी दल की उँगलियों पर नाचती है। मतलब यह है कि आधुनिक संसार मे आर्थिक विषयों का बड़ा ही महत्व है और अर्थशास्त्रों के तमाम साधनों पर पूंजीपतियों का अधिकार है। इस वर्ग का धर्म है राष्ट्रीयवाद, ध्येय है पैसा कमाना, और साधन है अपने तथा दूसरे देशों को आर्थिक गुलामी के चंगुल में फाँस कर, अपनी सभ्यता को उनपर लाद कर सैनिकबल द्वारा शासन करना।

पुराने समय में एक देश दूसरे देश को तलवार के जोर से जीतकर उसपर हुकूमत करने में गर्व का अनुभव करता था। आज भी एक देश का दूसरे पर आधिपत्य जमाने का अन्त तो नहीं हो गया है, हाँ, तरीके अवश्य बदल गये हैं। आज भी अधिक उन्नत और शक्तिशाली देश, निर्बल और अवनत देशों से आर्थिक लाभ उठाने के लिए पागल हो रहे हैं, उन्हे अपने देश की बनाई वस्तुओं की बिक्री का बाजार बनाने की चिन्ता है। इस प्रकार एक देश अगर दूसरे देश को अपनी गुलामी में रखने के लिए उत्सुक है, तो, अपनी हुकूमत की हविश पूरा करने के लिए नहीं; बल्कि उससे अधिक लाभ उठाने और वहाँ का धन बटोरने के लिए। यह तो

हुई साम्राज्यवाद की दूसरे देशों पर आधिपत्य की बात, अब जरा अपने देश मे होने वाले आर्थिक संघर्ष व जीवन युद्ध को देखिये।

प्रत्यक्ष को प्रमाण की जरूरत नहीं। आज हम क्या देख रहे हैं। चारो ओर कलह मची हुई है। अधिकांश लोग पैसे की कमी खाद्य पदार्थों के अभाव के कारण तड़प रहे हैं, तो थोड़े से पैसे की बढ़ती व वस्तुओं के ढेर के कारण परेशान हैं, और दिनों दिन ज्यादा बटोरने के लिये नाना प्रकार की मक्कारी और छल-छिद्र की सोचते हैं। धन की कमी के कारण सैकड़ों स्त्रियाँ वेश्या बन जाती हैं। दूसरी ओर जल्दी से पैसा इकठ्ठा करने के लिये पूंजीपति, मालदार और व्यापारी लोग सट्टा, जुआ, लाटरी आदि भ्रष्ट व्यवसायो में महापाप कहते हुए भी धड़ा-धड़ी से शरीक हो रहे हैं। जो लोग धर्म के अन्दर बड़ी-बड़ी डींगे मारते हैं, जो समाज मे बड़े-बड़े पंचो के स्थान पर बैठते हैं, जो मजहबवाद की छोटी-छोटी कल्पित बातो के लिये मूर्खों की तरह जान कुरबान करने को तैयार हो जाते है, वे ही आज अपने और अपने बाल-बच्चों के लिये पाँच या दस-दस रुपये की नौकरी करने के लिये जूतियाँ चटकाते फिरते हैं। न कहीं हिन्दू का सवाल है, न मुसलमान का। पैसे के मामले में लालाजी और मौलवी साहब दोनों सगे भाई हैं। सूद की दर कम करने की बात उठाओ, तो सूद को हराम मानने वाले मुसलमान पूंजीपति भी चीटीं को आटा खिलाने वाले लालाजी के हमबगल हैं। किसानो के लगान कम करने की बात उठाओ, तो हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई सब जमींदार एक है। मतलब यह कि समाज मे पैसे के सामने, धर्म, ईश्वर स्वर्ग सब फीके पड़ रहे हैं। पैसे के मामले में समाज मे दो ही जातियाँ हैं—पैसे वाले और फाके मस्त।

इस प्रकार थोड़े से मुट्ठी भर काले पूँजीपति, व्यापारी, बड़े बड़े जमींदार, ताल्लुकेदार पैसे की बढ़ती से उन्मादित होकर नाना प्रकार के सदाचार विरुद्ध कामों में मग्न हैं। नाच, रंग, खेल, तमाशे, सिनेमा, घुड़दौड़, बलात्कार आदि भयंकर से भयंकर पाप इनके वास्ते जायज हैं। इनके कार्यों पर धर्म की मोहर है, ईश्वर का आशीर्वाद है, और देशभक्ति की भी छाप है—अगर ये देश-सेवा शब्द चिल्लाने लगें। मुल्ले पंडित पादरी सदैव इनके दान के भिखारी बन इनके सामने खड़े रहते हैं। समाचार पत्रों और साहित्य तक को यह लोग अपनी क्षुद्रपरता की तृप्ति के लिये खरीद लेते हैं। दूसरी ओर कड़े धूप और कड़ी जाड़े में टट्टी लगा कर काम करने वाले किसान, मजदूर, मिस्त्री आदि पेट भर भोजन भी नहीं पाते। नवयुवक बेकारी से बिलबिला रहे हैं। लोग काम करना चाहते हैं, पर उन्हें काम नहीं मिलता। संसार की पैदावार पहले से कई गुना बढ़ चुकी है, किन्तु ग़रीबी, बेकारी भी दिनों दिन भीषण रूप धारण कर रही है। एक वर्ग का सम्पति व पैदावार के साधनों पर अधिकार होने के कारण काम करने वाले समुदाय उसके मोहताज हैं। वह अगर अपना लाभ समझें, तो काम दें, वरना बरखास्त करदें। मतलब यह है कि कमाने वाले समुदाय आज बाजार में बिकने की वस्तु है, और पैसे के लगाने वाले, उनकी कार्य-शक्ति के मालिक हैं। यह हो रहा है। एक वर्ग दूसरे वर्ग के खून का प्यासा है। जिसके आँखें हों, वह देखें।

साम्यवादियों का दोष

तो केवल इतना ही है कि उन्होंने इस जीवन युद्ध व आर्थिक संघर्ष को समझ लिया है, और फिर लोगों की ग़रीबी, बेकारी, नैतिक-पतन के कारणों को स्पष्टतः बता भी दिया है। उनका कहना है, वर्तमान समाज सङ्गठन दो दलों में विभक्त है। एक अर्थ-

सम्पन्न पूँजीपति वर्ग दूसरा अर्थ-विहीन मज़दूर किसान दल। इन दोनों दलों के स्वार्थों में बहुत बड़ा ज़बरदस्त विरोध उत्पन्न हो गया है, जो मालदारों, जमींदारों, पूँजीपतियों की रक्तशोषण नीति के कारण बढ़ता ही जा रहा है। पूंजीपति अपने अर्थ के प्रभाव के नीचे धनहीनों को कुचल देना चाहते हैं। दूसरी ओर मज़दूर व किसान दल भी इनकी नीति से ऊबकर सङ्गठन की ओर प्रत्यक्ष रूप में बढ़ रहा है। समुदाय धीरे-धीरे समझने लगा है, कि पूंजीपति निर्जीव धन की बदौलत हम सजीव प्राणियो पर अत्याचार कर रहे हैं। इन्होंने हमारे मन और कार्य-शक्ति पर धन की सत्ता के द्वारा अधिकार जमा लिया है। इन दोनों दलों का संघर्ष अनिवार्य है। और इनका सङ्गठन, जातीयता, धार्मिकता व राष्ट्रीयता के सिद्धान्त पर न होकर आर्थिक सिद्धान्तो के आधार पर हो। साम्यवादी केवल इस नग्न-सत्य का बखान करते हैं, परन्तु साथ ही अपने-आपको कमाने वाले समुदाय का समर्थक बतलाते है, बस यह उनका दोष है।

उनके उपाय

इस अनिवार्य युद्ध को बतलाने के बाद ये लोग इस युद्ध को शान्त करने के तथा समाज में सुख, शान्ति और स्थाई व्यवस्था स्थापित करने के कुछ उपाय भी बताते हैं। वह है (१) व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त के अस्तित्व को मिटा कर उत्पादन के साधनों पर ज़मीन, कारखानो, सड़को, रेलों, बैङ्कों, पूंजी इत्यादि पर समाज का अधिकार स्थापित करना। (२) समाज को जातीयता, धार्मिकता व राष्ट्रीयता के आधार पर न बाँट कर देशों, रोजगारों के आधार पर बाँटना। (३) समाज में काम करने वालों का राज्य स्थापित करना, और काहिलों व अलहदियों, मुफ्तखोरो, धार्मिक ठेकेदारों को उनके अधिकारों से वंचित करना। (४) हरेक को

काम देना, और इस बात का पूरा खयाल रखना कि हर एक को उसके श्रम का पूर्ण रूप से बदला मिलेगा। दो शब्दों में ये हैं, उनके सिद्धान्तों का निचोड़ और उनका साधन है। समाज के समस्त असन्तुष्ट दलों को सङ्गठित करके वर्तमान सामाजिक सङ्गठन के विरुद्ध विद्रोह कराना। निस्सन्देह ये लोग शान्तिमय व अशांतिमय उपायों में कोई विशेष भेद नहीं समझते। किन्तु हिंसात्मक तथा अशान्तिमय साधनों का उपयोग करना तो वर्तमान सरकार के हाथ में खेलना है। केवल शान्तिमय उपाय जैसे हड़ताल, करबन्दी अन्दोलन, विचारों का प्रचार ही ऐसे साधन हैं, जिनके द्वारा सफलता निश्चय है। ये युद्ध तो विकास के युद्ध हैं।

समालोचकों के आक्षेप

व्यक्तिगत सम्पत्ति के सिद्धान्त के अस्वीकार के कारण बहुत से लोग बिगड़कर कहते हैं, कि ऐसा तो असम्भव है। व्यक्तिगत सम्पत्ति तो ऐतिहासिक उपहार है। इस विषय पर हम विस्तार में तो नहीं पड़ना चाहते, जहाँ तक इतिहास का सम्बन्ध है, हम यह कह सकते हैं कि (एक भयंकर भूल है) भूतकालों की बातों पर विश्वास करके ही, भविष्य की बातों का निश्चय कर लेना। क्योंकि मनुष्य जाति उन्नतिशील प्राणी है, उसका भविष्य भूतकाल की अपेक्षा उज्ज्वल रहता है। भूतकाल के अनुभावों से वह लाभ अवश्य उठाता है; परन्तु केवल इसके आधार पर वह भावी तत्व तय नहीं हो सकते। इतिहास मे ऐसी बहुत-सी बातों का पता नहीं, जिनकी आज खोज हो रही है, और जिनसे मनुष्य जाति अपरिमित लाभ उठा रही है। इस प्रकार सम्भव है व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना उस समय बुरी न मानी जाती हो, और इसी कारण इसका अस्तित्त्व बना रहा हो, पर आज के जमाने में तो इसने गजब ढा रक्खा है। इसी वजह से समाज दो दलों में बटा हुआ

है, और एक दूसरे के खून का प्यासा है। समाज की वर्तमान कलह व अशान्ति का यही एक मुख्य कारण है। ऐसी हालत में केवल इतिहास का पल्ला पकड़ कर उसको अस्वाभाविक कह देने से संसार का समाधान नहीं हो सकता।

राष्ट्रवादियों की स्कीम की अपूर्णता

'राष्ट्रीयवादियों का कहना है, कि पहले हमे एक देश मे संगठित होना चाहिए, और पूर्ण स्वतन्त्रता का आन्दोलन करना चाहिए।' ये दोनो भ्रम में डालने वाली है। एक राष्ट्र मे संगठित होना चाहिए, बड़ी अच्छी बात है; पर किस आधार पर? यहाँ ये चुप हैं। वर्तमान सामाजिक संगठन में ये कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं करना चाहते, और न वर्तमान में दिनोंदिन होनेवाले आर्थिक युद्ध को ही बतलाना चाहते हैं। पूर्ण-स्वतन्त्रता की कोई स्पष्ट व्याख्या भी नहीं करते, और न यही बताते है, कि पूर्ण-स्वतन्त्रता किसके लिये चाहिये।

इनके साधन है

देश की विभिन्न जातियो में समझौते द्वारा एक राष्ट्र बनाने की कल्पना करना। जरा इसकी भी पोल को देखिये। आज हमारा देश, जाति-पांति, छूआछूत और धार्मिक मतभेद के कारण लाखों सम्प्रदायों में बॅटा हुआ है। प्रत्येक सम्प्रदाय एक दूसरे से रीति-रिवाज व रूढ़ियो की गुलामी के कारण अपनी-अपनी अलग डफली बजा रहा है। जाति-पाँति के झमेले ने हमारे अन्दर भेद-भाव की दीवारें खड़ी कर रक्खी हैं, छूआछूत ने ऊँचनीच के भाव बना रक्खे हैं, और धार्मिक मतभेदों ने हमे अलग-अलग कोठरियों में बन्द कर, शुद्ध हवा से वंचित कर रखा है। राष्ट्रीय उत्थान के समर्थक इन सब बन्धनों को तोड़ना नहीं चाहते, और अपना काम

चलाने के लिए इन सब चीजों को जैसे का तैसा स्वीकार कर लेते हैं। वह चाहते हैं कि इन सब विभिन्न सम्प्रदायों को देशभक्ति के नाम पर सङ्गठित करना। इस नीति का फल वही हो रहा है, जो कि यूरोप के अन्दर शान्ति-समस्या को सुलझाने वाली कान्फ्रेंसों का अब तक होता रहा है। विभिन्नता के असली कारणों को पूर्णतः मिटाये हुये समझौते की बातें करना, भूलभुलैया का प्रपंच नहीं तो क्या है? लखनऊ पैक्ट, नेहरू रिपोर्ट, मालवीय सम्मेलन इस विफलता के जीते-जागते उदाहरण हैं।

मुख्य सवाल तो यह है कि समझौता किस सिद्धान्त पर हो? इन सब को आपस में मिलाने वाली चीजें क्या हैं? राष्ट्रीय स्वतन्त्रता—सो, वह तो केवल कल्पना ही है। देश-भक्ति यह भी एक कोरा भाव ही है। यह युग है प्रत्यक्षवाद का और सांसारिक व्यवहार का। अब लोग अलौकिक कल्पनाओं के पीछे नहीं मरते और न स्वर्ग, नरक के तिलिस्म में ही फँसते हैं। इसकी पूर्ति के लिए राष्ट्रीयवादी कौंसिल असेम्बली की सीटें नियुक्त करते हैं, जिसका प्रतिकार, सरकार एक को दूसरे से देकर कर देती है। सारे सम्मेलन इसीलिए विफल हुए। १९३२ मे मालवीय-सम्मेलन ने बड़े-बड़े परिश्रम के बाद केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में हिन्दू-मुसलमानों की सीटों का समझौता किया। झट से सर सेमुयल होर ने सन् ३२ की घोषणा करदी। बस मुसलमान मचल गये, और सम्मेलन की टायँ टायँ फिस होगई। इस प्रकार के समझौतो में तो वही सफल होगा, जिसके हाथ में देने की शक्ति है। वह है सरकार के पास। सो वह क्यों समझौता चाहेगी। अतएव राष्ट्रवादियों यानी देश-भक्ति की दुहाई देने वालों के इस साधन से न तो देश ही सङ्गठित हो पाता है, और न प्रचलित सामाजिक बन्धन ही टूट पाते हैं।

दूसरी ओर साम्यवादियों का प्रोग्राम बहुत ही स्पष्ट और

सरल है। वह इन दोनों ही उद्देश्यो की पूर्ति करता है। वह लोग मनुष्य समाज को जाति-पांति और धर्म के आधार पर नही स्वीकार करते; बल्कि लोगों को उनके रोज़गार व व्यवसाय के आधार पर मान कर संगठित करते हैं। खेती करने वाले सब किसान हैं—चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, ईसाई या यहूदी। मज़दूरो की भी अपनी अलग बिरादरी है। समाज में मज़दूरी पेशा करने वाले सारे मज़दूर एक समुदाय हैं। इसी प्रकार व्यापारियों, पूंजीपतियों, ज़मींदारो, ताल्लुकेदारों तथा इन अन्य पिट्ठुओ की अलग बिरा-दरी है। इस प्रकार मनुष्य समाज, आर्थिक सिद्धान्तों पर, पेशों व रोज़गारों के कारण बँटा हुआ है और इन सब मे एक दूसरे का सहयोग होते हुए भी आर्थिक टक्करें हो रही है। केवल इस सीधी सी बात को बिलबिलाती और अँधेरे मे भटकती हुई जनता को बताने से समाज के सैकड़ो रोग नष्ट हो जाते है। एकही तीर से सैकड़ों निशानें बिध जाते है। जाति-पांति का प्रश्न भी हल हो जाता है। छुआछूत का भूत भी मिट जाता है और धार्मिक मत-भेद का पहाड़ भी बालू का ढेर बन जाता है। धर्म की अफीम का नशा उतर कर, मनुष्य मनुष्य के समीप आ जाता है।

आज़ादी के आन्दोलन क्यों विफल हुए ?

१८५७ के पिटे हुए भारत ने सर्वप्रथम १९२१ के असहयोग आन्दोलन द्वारा आज़ादी चिल्लाना सीखा। असहयोग आन्दोलन आसमान से बिजली की भांति नहीं टूटा था। उसके स्थायी कारण थे। वह देशीय व अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं के जमघट का परिणाम था। उसके पीछे १८५७ से बाद तक की एक कसक थी। १९१४ के महायुद्ध की प्रतिज्ञाओं का प्रपंच था, और थीं उसके साथ अन्तर्राष्ट्रीय जनसत्तात्मक लहर की बौछारें, राष्ट्रपति विलसन की घोषणा और आयर्लैण्ड के होमरूल बिल की सफलता। इन सब

बाह्य कारणों के साथ था भारतीय सरकार का रौलेट एक्ट का उपहार और युद्ध काल की प्रतिज्ञाओं की अपूर्णता। और इन सबके साथ समयानुकूल लीडर। आन्दोलन उठा और आँधी की तरह चला। तूफान आया और चला गया। क्यों चला गया? इस पर बहुत कुछ कहा जा सकता है, किन्तु उसका मुख्य कारण यही था कि देश का नेता आजादी के रूप का बखान करने में स्पष्ट न था। कल्पनाओं के पीछे, जैसे अन्याय, असत्य, हिंसा इत्यादि मानव मनोवृत्तियों के विरुद्ध, आन्दोलन उठा और इन भावनाओं के सोते ही आन्दोलन की गति भी मन्द होगई। आज जलियान वाले बाग़ की घटना किसी को उत्तेजित नहीं करती। यह मनुष्य का स्वभाव है, न उसमें घृणा ही स्थायी है और न प्रेम ही।

गांधीजी ने इस बात को ताड़ा और १९३० के आन्दोलन का आधार नमक कर को तोड़ना केवल इसीलिए रक्खा गया। १९३० में पूर्ण स्वतन्त्रता का युद्ध हुआ। यह क्रान्ति के सिद्धान्तों पर अवलम्बित था और था इसके पीछे देश का १० वर्ष का अनुभव। इसके भी स्थायी व क्षणिक कारण थे। ये भी घटनाओं के जमघट का ही परिणाम था। साइमन कमीशन की नियुक्ति, राष्ट्रीयवादियों व लिबरलों का मेल व हाजी बिल व विनियमय दर के कारण व्यापारियों व पूँजीपतियो का सरकार के प्रति असन्तोष, गांधी की बारडोली में सफलता, साम्यवादियो के प्रभाव की वृद्धि, जवाहर का पूर्ण स्वतन्त्रता का आन्दोलन, क्रान्तिकारी षड़यंत्रों की भरमार, यह सब ऐसी घटनाएँ थीं, जिन्होंने देश को युद्ध की ओर अग्रसर कर रक्खा था।

युद्ध हुआ और ख़ूब हुआ। नमक कर से बढ़ते-बढ़ते करबन्दी आन्दोलन तक पहुंच गया। १९३१ मार्च मास में गांधी-अरविन समझौता हुआ। कराँची कांग्रेस में जवाहरलाल के घोर उद्योग से

एक आर्थिक कार्य-क्रम भी रक्खा गया। इस सुलह के युग मे नये नये दल कांग्रेस में आये और गये। किसानो का पदार्पण हुआ, पूँजीपतियो व जमींदारो की ओर से खींच शुरू हुई। कांग्रेस जनता की होने लगी। उधर सरकार ने भी राष्ट्रीय शक्ति को भाँप लिया। संघर्ष अनिवार्य था। दो गवर्नमेण्ट साथ-साथ चल नहीं सकती थी। सन् १९३२ की जनवरी मास में युद्ध शुरू हुआ। पूंजीपति व्यापारी, जमींदार इत्यादि ये शुरू से ही आन्दोलन से खिसकने लगे। जनता, विशेष कर किसानों ने खूब साथ दिया और जी तोड़कर लड़े। किन्तु फिर भी कांग्रेस का प्रोग्राम स्पष्ट न था। एक तरफ पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा थी, दूसरी ओर पूर्ण स्वतन्त्रता का तत्व, ११ शर्तें, हृदय परिवर्तन, यहाँ तक कि पूना कांफ्रेन्स मे सन् १९३३ मे तो केवल शान्ति स्थापना की बातें ही रह गई थी। क्रिया की प्रतिक्रिया शुरू हुई। आन्दोलन में शिथिलता आयी। गर्म दल के लोग तो जेल मे ही रहे, किन्तु नर्म दल वाले उठे और फिर से कौंसिल प्रवेश, वैध आन्दोलन, देश के उत्थान की बाते उमड़ने लगी। दुर्भाग्य से आज फिर राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर उन सब लोगो के हाथो में पड़ गयी है, जिनकी पूर्ण स्वतन्त्रता कौंसिल की सीटों या ह्वाइट पेपर मे कुछ संशोधन कराने मे ही है। पूर्ण स्वतन्त्रता का स्पष्ट रूप न होने के कारण आज फिर हम देशभक्ति के नाम पर वैध आन्दोलन की तरङ्ग सुन रहे हैं। कांग्रेस के सर्वेसर्वा नेता की सबसे बड़ी भूल यही रही है कि उसने सदैव ऐसे दलो से दुर्बल समझौते किए जिनकी देशभक्ति उनकी नोटबुक से बाहर नही है। गांधी जी शायद आशा करते हो कि यह लोग उनके कहने से राष्ट्रीय आन्दोलन को लाभ पहुँचावेगे। लेकिन सच तो यह है कि ऐसे ही सज्जनो ने १९२३ में जनता को हताश किया था और फिर यही लोग गांधी जी की

दुम पकड़ कर राष्ट्रीय आन्दोलन का मटियामेट कर रहे हैं। जनता, किसान, मज़दूर और नवयुवक किस उद्देश्य व उत्साह को लेकर अपनी जान खपावें? संसार के सभी आन्दोलनों में शिथिलता आती है, किन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि हताश होकर पीछे को लौट जावें।

देश जब तक पूर्ण स्वतन्त्रता का स्पष्ट अर्थ नहीं समझेगा, क्योंकि पूर्ण स्वतन्त्रता के भी भिन्न भिन्न वर्गों के लिये अलग अलग अर्थ हैं, तब तक कोई भी समुदाय आन्दोलन में खुल कर नहीं खेलेगा। समय आगया है कि हमको पीछे की घटनाओं से लाभ उठा कर साहस के साथ इसका एलान करना चाहिये। आज पूँजीपति कहते हैं कि हमने आंदोलन में सबसे अधिक त्याग किया, अतएव अब आन्दोलन को बन्द करना चाहिये, नवयुवक व किसान कहते हैं कि हमने सबसे अधिक त्याग किया। अगर हमने स्पष्टतः अपनी नीति व कार्य-क्रम रक्खा होता तो आज यह तू-तू मैं-मैं न होती। सबको सन्तुष्ट करके साथ ले चलने की कल्पना करना सबको धोका देना है। इसी कारण कोई भी जी-जान से शरीक नहीं होता। पूँजीपतियों व व्यापारियों को यह भय रहता है कि कहीं मजदूर लोग ज़ोर न पकड़ जावें और ज़मींदार किसानों की शक्ति से भय खाते रहते हैं। निःसन्देह राष्ट्रीयता के मद में शरीक तो सब सम्प्रदाय होते हैं, परन्तु ज्यो ही संघर्ष तीव्र होने लगता है, सभी पारस्परिक भय और आशंका होने के कारण भाग जाते हैं, और अन्त मे सब निराश हो, एक दूसरे पर दोषारोपण करने लगते हैं। साम्यवादी इस प्रश्न पर बिलकुल साफ हैं। वह डंके की चोट से एलान करते हैं कि पूर्ण स्वतन्त्रता का अर्थ है—देश में मजूरों, किसानों व अन्य काम करने वालों की देशी व विदेशी पूँजीपतियों व सरकार के हाथो से मुक्ति होना। जिन सम्प्रदायों

को उनके इस एलान से सुखी होने की आशा हो, वह इस जीवन युद्ध में सम्मिलित होवे। और जो देशभक्ति से प्रोत्साहित हो, भारत की गुलामी को देख कर तड़प रहे हों वह भी आवें, और प्रचलित अन्याय व लड़ाई-झगड़े के विरुद्ध हमारा साथ दें। इसमें न किसी आशंका की जरूरत है और न कोई मृग-मरीचिका सा दृश्य है।

क्या बड़ी-बड़ी मशीनों की ज़रूरत नहीं है?

लेखक—श्रीयुत सेठ दामोदरस्वरूप।

अब यह प्रश्न उठता है कि यदि बड़ी-बड़ी मशीनों का आविष्कार ही किसान और मजदूरों की गुलामी का जिम्मेदार है, तो क्या इन मशीनो की ज़रूरत ही नहीं है? नहीं, जरूरत है; क्योकि इन मशीनों का आविष्कार अस्वाभाविक नहीं; बल्कि मानव जाति के विकास के इतिहास में सर्वथा अनुकूल है। मानव जाति का सारा इतिहास एक प्रकार से वर्गों के परस्पर संघर्ष का इतिहास रहा है। समाज के विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं मे अधिकारी लोगो और दलित वर्ग के बीच, मालिक और गुलामो के बीच बराबर संग्राम

रहा है। यह संघर्ष अब विकास की उस सीमा पर पहुँच गया है कि जहाँ अधिकारी और शासक वर्ग का सदा के लिए बिना अन्त हुए पददलित और पीड़ित वर्ग के लोग उनके जुल्म और उत्पीड़न से आजाद नहीं हो सकते। औद्योगिक क्रान्ति और औद्योगिक विकास के साथ मानव जाति का भी बराबर विकास हो रहा है। दूसरे शब्दो में सारे विकास मानव जाति ही के विकास हैं। बिना मनुष्य के बौद्धिक विकास के औद्योगिक विकास सम्भव ही नहीं होता, बड़ी-बड़ी-मशीनरी की ईजाद मनुष्य के बौद्धिक विकास ही का फल है। मनुष्य-गणना का इतिहास बता रहा है कि दुनिया की आबादी बराबर बढ़ रही है। यदि आज संसार में कृषी की बड़ी-बड़ी मशीने न हुई होतीं, तो अन्न की पैदावार आज भी उतनी ही होती, जितनी कि आज से १०० वर्ष पहले थी। क्योंकि पुरानी चाल के औजारो और पुराने तरीकों से अन्न की उपज बढ़ाने का कोई उपाय हो हो नहीं सकता था; पर दुनिया की आबादी आज १०० वर्ष पहले से बहुत अधिक बढ़ गयी है और अगले १०० वर्ष मे और भी बढ़ जायगी। फिर अगर उसी के साथ साथ पैदावार न बढ़े, तो करोड़ों की संख्या में लोग अन्न के बिना तड़प तड़प कर मरेंगे। इसीलिये जहाँ एक ओर बड़ी-बड़ी मशीनरी की ईजाद किसानों और मजदूरो की गुलामी की जिम्मेवार है, वहाँ वह बढ़ती हुई दुनिया की आबादी के लिए आवश्यक वस्तुएँ और अन्न पैदा करने की कठिनाई का भी सवाल हल कर देती है। जो और किसी प्रकार सम्भव न था। इसलिये जो लोग बड़ी बड़ी कलों और मशीनों का विरोध करते हैं, वह मानव जाति और संसार के विकास के इतिहास से अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हैं। न तो इस विकास की प्रगति का रोकना सम्भव है और न इसके रोकने की आवश्यकता ही है। इसलिये जो लोग Back to Nature

अतीत के स्वप्न देखते हैं, उनकी यह कल्पना-मात्र है। वह वस्तु-स्थिति की ओर से आँखें बन्द करके असम्भव को सम्भव बनाना चाहते हैं। आज मशीन युग है, इसलिये युग के अनुसार समाज की व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन करना ही एकमात्र हमारा ध्येय होना चाहिये। युग के पलटने का व्यर्थ प्रयत्न नहीं। जब यह सिद्ध हो गया कि बड़ी-बड़ी मशीनों के ईजाद ने संसार की बढ़ती हुई आबादी की ज़रूरतो को पूरा करने की बड़ी भारी कठिनाई को हल कर दिया है, तो फिर हमे गम्भीरता से इस बात पर विचार करना चाहिये कि इन मशीनो के सम्बन्ध मे और कौन सी बात है, जो श्रमियो और किसानो को पूँजीपतियो के रहम पर छोड़ देती है। थोड़ा सा विचार करने ही से स्पष्ट हो जाता है कि बड़ी-बड़ी मशीने और बड़े-बड़े कारखाने यदि एक व्यक्ति या थोड़े से व्यक्तियो की मिलकियत न होकर समाज की मिलकियत हो, तो वह किसी विशेष श्रेणी को दूसरी श्रेणी का गुलाम बना सकने का कारण न हो सकेंगी। इसी प्रकार मशीनरी के साथ-साथ यदि उत्पादन के दूसरे साधन, ज़मीन इत्यादि भी सारे समाज की मिलकियत हो जावे तो संसार से वर्गवाद बहुत हद तक नष्ट हो जाय। फिर ज़मीन्दार और किसान, कारखानादार और मज़दूर का प्रश्न ही न रहे, सब ही स्वामी और सबही सेवक हों, यही साम्यवाद का मूल मन्त्र है और इसी प्रकार की व्यवस्था से मशीनरी का सदुपयोग हो सकता है। एक व्यक्ति या थोड़े से व्यक्तियों की संपत्ति होने से मशीनरी किसानो और मज़दूरो को किस प्रकार गुलाम बनाती है? पहली बात तो यह है, व्यक्तिगत सम्पत्ति होने के कारण बड़ी बड़ी मशीनो के व्यवहार से जो लाभ होता है, उसके मालिक एक या थोड़े से व्यक्ति, जो कुछ भी परिश्रम नहीं करते हैं, बन जाते हैं। जो थोड़ी-सी मज़दूरी यह मालिक मज़दूर

या किसान को देते हैं; वह उसकी कड़ी मेहनत के सामने कोई भी मूल्य नहीं रखती। यदि मजदूर और किसान खुद मशीनरी के मालिक होते, तो उसके द्वारा करोड़ों रुपये के लाभ में वह भी अपनी मेहनत के अनुसार हिस्सा पाते।

दूसरी बात यह है कि मिल मालिक या जमींदार इन मशीनों का व्यवहार मजदूरों और किसानों के हित के दृष्टि कोण से नहीं करता है; बल्कि अपने निजी लाभ के दृष्टिकोण से। एक दृष्टान्त लीजिये—एक कारखाने में किसी कार्य को १० मजदूर १० घण्टे रोजाना काम करके उसे समाप्त करते हैं। अब कोई नई और बढ़िया मशीन बन गई, जो उसी काम को केवल १० घण्टे में ही समाप्त कर देती है, परिणाम यह होगा, कि वह मिल-मालिक ९ मजदूरों को अपने कारखाने से निकाल देगा और वह बेचारे बेकारी के शिकार बनकर भूखों मरेंगे। यदि मजदूर स्वयं उस मशीन के मालिक होते, तो ऐसा सम्भव न होता। मिल-मालिकों के इस प्रकार के व्यवहार ने बेकारी बढ़ा दी है और बेकार मजदूर भूख के कष्ट से बचने के बजाय गुलामी करने और किसी-न-किसी प्रकार से पेट भरने के लिये तैयार हो जाते हैं। एक या थोड़े से लोगों की सम्पत्ति होने के कारण किसी मिल के मालिक अपने या अपने साथियों के लाभ की बात ही सोच सकते हैं। उनके लाभ से समाज के एक बड़े भाग को कितना कष्ट और कितनी हानि होती है, यह बात उनके ध्यान में भी नहीं आती। इस प्रकार औद्योगिक क्रान्ति के फल स्वरूप जब मशीन ही व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गयी और स्वतन्त्र उद्योग धन्धे उनका मुकाबिला न कर सकने के कारण नष्ट हो गये तो फिर मजदूरों और किसानों को इन पूँजीपतियों की गुलामी के सिवाय दूसरा कोई चारा ही न रहा। सार्वजनिक उपयोग के साधनों का समष्टीकरण ही इस रोग की

एकमात्र औषधि है। ऊपर हमने लिखा है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति होने से उत्पादन के साधन संघर्ष में बेकारी के रोग फैलते हैं।

बेकारी किस प्रकार शुरू हुई? इस बात के समझने के बाद इसके फैलाव के समझने में कोई कठिनाई नहीं रहती। प्रत्येक मनुष्य बाजार से वस्तुएं खरीदता है। इस प्रकार जितने अधिक लोग बाजार से चीजें मोल लेंगे, उतनी ही वस्तुओं को बनाने के लिए कारखानों की जरूरत पड़ेगी। इसी प्रकार यदि बाजार में चीजों की माँग घट जावे, तो उसी हद तक कारखानो की कमी हो जायगी या उन कारखानों में काम करने वाले कम हो जायँगे, दूसरे शब्दों में जो लोग काम के कम होने के कारण बेकार कर दिये गये, वह बेकार होने के कारण पहले ही की तरह अब बाजार से चीजे खरीदना बन्द कर देंगे, क्योंकि उनके पास बेकार होने से अब कोई आमदनी तो रह नहीं गयी। परिणाम यह होगा कि बाजार मे चीजो की माँग और भी घट जावेगी और माँग घटने से और भी लोग कारखानो से निकाले जावेंगे, क्योकि जब बाजार में माल की खपत ही नहीं तो कारखानेदार जो अपना कारखाना निजी लाभ के लिए चलाता है, और जो उसकी निजी मिलकियत है, वह समाज मे इस बढ़ती हुई बेकारी से अपने लाभ को क्यों खोने लगा। यदि वह कारखाना सब मजदूरों की मिलकियत होता, तो वे लोग उतनी ही चीजें तैयार करते जितनी की माँग होती और कारखाने से न कोई निकाला जाता, क्योकि सबकी सम्पत्ति होने से कारखाने का सारा लाभ सब में बँट जाता और अधिक बेकारी न फैलने पाती।

इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि थोड़े से लोगो के हाथ में ही उत्पादन के साधन होने के कारण से बेकारी शुरू होती है और धीरे-धीरे फैल कर समाज की अत्यधिक संख्या को बेकार बना

रही है, जिसका अन्तिम परिणाम एक संसारव्यापी क्रान्ति ही होगा।

इस प्रकार बेकारी बढ़ने से लाखों और करोड़ों स्त्री, पुरुष और बच्चे न केवल भूखे और नंगे ही रहते हैं; बल्कि दिन-प्रति दिन उनका शारीरिक, नैतिक, और मानसिक पतन भी बढ़ता जाता है। इसीलिये आवश्यकता इस बात की है कि मशीनरी का विरोध करने के बदले व्यक्तिगत सम्पत्ति होने के कारण उसका जो दुरुपयोग होता है उसे रोकें; क्योंकि जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि मनुष्यों की बढ़ती हुई संख्या और बढ़ती हुई आवश्यकताओ के कारण मशीनरी का व्यवहार अनिवार्य हो गया है। संसार में कोई भी अच्छी-से-अच्छी चीज़ ऐसी नहीं है, जिसका दुरुपयोग न हो रहा हो या न हो सकता हो। तब यह कहाँ तक बुद्धिमानी है कि किसी वस्तु के दुरुपयोग के कारण हम उसी चीज ही के विरोधी हो जायँ, और Back to Nature की दुहाई देने लगें। आवश्यकता तो उसके दुरुपयोग के रोकने की है। जिस समय मशीनरी इत्यादि साधन थोड़े-से भाग्यवान लोगों की मिलकियत न रहकर मजदूरो और किसानों की—या यो कहिये कि समाज की मिलकियत हो जाते हैं, उस समय उनका दुरुपयोग रूपी विष नष्ट होकर उसमें अमृत ही रह जाता है। और—

१—लोगों को शारीरिक परिश्रम कम करना पड़ता है।

२—पैदावार अधिक हो जाती है।

३—बेकारी नहीं फैलती।

४—सब लोग जो परिश्रम करते हैं, उनकी उचित आवश्यकताये आसानी से पूरी हो सकती हैं।

५—अवकाश मिलने से समाज को शारीरिक, मानसिक और विविध प्रकार की उन्नति करने के लिए काफी समय और सुविधायें

मिल जाती हैं। वर्तमान समाज संगठन में श्रमियों और उत्पादन के साधनो के अधिकारियों के स्वार्थ परस्पर विरोधी हैं। बिना एक की हानि के दूसरे को लाभ हो ही नहीं सकता। दृष्टान्त के रूप में जब एक कारखाने या फर्म में मज़दूर या किसान की मजदूरी घटाई जाती है, तो कारखाने या फार्म के मालिक को लाभ होता है और यदि मजदूरी बढ़ाई जाती है, तो स्वामी की हानि होती है। इसी प्रकार जब तक व्यक्तिगत अधिकारो को कम नहीं किया जाता, समाज के अधिकार बँट ही नही सकते। चूँकि थोड़े-से लोग उत्पादन के साधनों को पकड़े हुए हैं, जिसके कारण समाज की कठिनाइयाँ दिन-पर-दिन बढ़ रही है। समाज का यह कर्त्तव्य है, कि वह इस बात की मॉग रखे कि यह साधन समाज की मिलकियत हो जावे; पर जैसा हम ऊपर कह चुके है। इसमें अधिकारी वर्ग की हानि है। अतः वह अधिकारी वर्ग सहज मे त्याग के लिये तैयार नहीं हो सकता। इसलिये समाज को संगठित होकर ही यह अधिकार उनके हाथो से निकालने होगे।

हमारे बहुत से भाई और स्वयं गांधीजी भी इस बात का विरोध कर रहे हैं कि किसानो और मजदूरों का संगठन राजनीतिक अधिकार प्राप्ति के लिए नहीं; बल्कि उनकी वर्तमान दशा को सुधारने के लिए होना चाहिये। इस दलील में कितना नैतिक जोश है? अधिकारी वर्ग के लोग इतना तो अच्छी तरह से सोच समझ रहे है, कि मजदूरों और किसानों की आंखें धीरे धीरे खुल रही है और वह ज्यादा दिनों तक अब उनका इस प्रकार खून चूस नही सकते है। इसी लिये वह रोते हुए बच्चे की तरह उनको खिलौना-सा देकर टालना चाहते है। उनके अधिकार नही। वह अपनी दया के रूप मे उनको थोड़ी-सी मजदूरी बढ़ा देना या कुछ अन्य छोटी-छोटी सुविधाये देकर ही पीछा छुड़ाना चाहते हैं।

इससे किसानों और मजदूरों के रोग का निदान कैसे हो सकता है? रोग इतना बढ़ गया है, कि क्षणिक इलाज कारगर नहीं हो सकता; पर चूँकि पूँजीपति लोग अपने पुश्तैनी अधिकारों को सहज में नहीं छोड़ना चाहते। इसीलिये पूँजीपति और श्रमियों को मिलाये रखने को गाथा गायी जाती है, जो सर्वथा अस्वाभाविक है।

किसानों के सम्बन्ध में भी यही बात है। इनका लगान कुछ कम या आधा करने का राग गाया जाता है। पर इससे किसानों का भला कैसे हो सकता है और रोग जड़ मूल से कैसे नष्ट हो सकता है? जब तक वह उत्पादन के साधन, भूमि इत्यादि के स्वयं मालिक नहीं होते, वह जमीन्दारों के पैरों के नीचे कुचले जाते रहेंगे। आज तो जमीन्दार किसान को अपना नौकर-गुलाम ही समझता है। लगान ही की क्या बात है, नजराना, शुकराना-व्यवहारी, जमीन्दार के लड़के बच्चों की शादी, बेगार, बेदखली और मारपीट ये सब दुर्घटनायें व्यक्तिगत सम्पत्ति ही की तो हैं। यदि किसान जिस भूमि को जोतता, बोता और काटता है, उसका वह स्वयं मालिक होता, तो किसकी मजाल थी, कि उपर्युक्त तारीकों से वह लगातार उसके खून की एक-एक बून्द चूस लेता, क्या लगान में कुछ कमी हो जाने से या आधा हो जाने से, किसान जमीन्दार का आसामी नहीं रहेगा। उसके अधिकारों में क्या तरक्की हो जावेगी। जो वर्षों से संसार की आर्थिक स्थिति का अध्ययन कर रहे हैं और जिन्होंने देश के दम तोड़ते हुए किसानों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त की है, उनका तो कुछ दूसरा ही कहना है। अनेक स्थानों पर तो किसानो की यह अवस्था है कि साल भर की फसल काटने पर जो कुछ उन्हें प्राप्त होता है वह उनकी साल भर की (मेहनत की मजदूरी) और बीज, खाद, इत्यादि के खर्च के बराबर भी नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में कुछ लगान कम करने

आधा करने की बात, मजाक नहीं तो क्या है। जो लोग सचमुच किसानों के हित की लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं, उन्हें इस प्रश्न पर गम्भीरता-पूर्वक विचार करना चाहिये। बात को उड़ा देने या टाल मटोल से काम नहीं चल सकता। अभी हमारे पास अवसर है, हम चाहें तो उसका सदुपयोग कर सकते हैं। कल यह बात नहीं होगी। साम्यवाद के प्रचार को धन के जोर से, पाशविक बल के जोर से, या काले कानूनो के जोर से रोकना कुछ समय के लिए भले ही सम्भव हो। पर जब किसानों और मजदूरो की मुसीबत का घड़ा—या यो कहिये कि पूँजीपतियों और जमीन्दारों के पापों का प्याला भर जायगा, तो वह छलकेगा ही—क्रान्ति होगी ही। उसको रुपये का जोर या कानून का बल न रोक सकेगा, बुद्धिमानी इसी मे है कि समय की गति को पहिचान कर किसानों और मजदूरो के लाभ के विचार से नहीं तो अपने ही लाभ को ध्यान में रख कर पूँजीपति और जमीन्दार भाई अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति को समाज के आधीन कर देने के लिये राजी हो जायँ और भावी देशव्यापी क्रान्ति के दुष्परिणामो के उत्पन्न होने की नौबत को न आने दें। आज साम्यवादियों पर श्रेणी-युद्ध के प्रचार और पूँजीपतियो के विरुद्ध श्रमियों को भड़काने का दोष लगाया जा रहा है। इस दोषारोपण का वही रूप है और वही ढंग है जो सरकार का कांग्रेस वालो पर राजद्रोह का दोष लगाने में है। न होगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। यदि लोग सुखी और सम्पन्न हों, उन्हे जीवन को सफल बनाने की सारी सुविधायें प्राप्त हो, तो किसकी हिम्मत सरकार के विरुद्ध मुँह खोलने की होगी। और कोई ऐसी मूर्खता कर भी बैठे, तो जिन्हे वह भड़काना चाहता है, वह खुद उस प्रचारक को बेवकूफ बनाकर छोड़ देंगे। हमारे कांग्रेसी नेता सरकार के इस प्रकार के दोषारोपण का यह जवाब देते हैं, वह साम्यवादियों पर लांछन

लगाते हुए किस प्रकार अपनी ही दलील को भूल जाते हैं। बात एक ही है। जो बात सरकार और भारत जनता के बीच में है, वही किसान मजदूर और पूँजीपतियों या उनके एजन्टों (गुमास्तों) के बीच में है। शासकवर्ग और पूंजीपति एकही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। दोनों में कुछ अन्तर नहीं है। और यदि है तो यह कि पूँजीपति और जमींदार शासकों से भी ज्यादा-खतरनाक हैं। जो बात सरकार नहीं करती या करने जाती है, उसे यह आँख बन्द करके कर डालते हैं और इस प्रकार कांग्रेस की जड़ को और भी मजबूत कर देते हैं या यों कहिये कि यदि एक नाग नाथ हैं, तो दूसरे साँप नाथ हैं। इसी लिये लोगों को ऐसी थोथी दलीलों की ओर ध्यान ही न देना चाहिये; साम्यवादी लोग कांग्रेस में फूट नहीं डालना चाहते और न वे कोरे आदर्शवादी ही हैं। वह तो व्याहारिक ही बातें कहते हैं, ऐसी बातें जो सम्भव हैं। असम्भव बातें वह लोग कहते जो तेल और पानी को मिलाये रखना चाहते हैं, जो व्याहारिक नहीं हैं। पूँजीपति और श्रमी इन दोनोंकी बिलकुल तेल और पानी ही की दशा है और आज से नहीं सदियों से, सृष्टि के आरम्भ से ही इन वर्गों का संघर्ष होता रहा है। इस संघर्ष को रोकने का एकमात्र उपाय वर्ग भेद को मिटाना ही है, वर्गों को बनाये रखते हुए उनका भेद मिटाने की बात कहना या दूसरों पर भेद पैदा करने का दोष लगाना न बुद्धिमानी की बात है और न व्यवहार की। साम्यवाद का एकमात्र ध्येय वर्गहीन समाज का निर्माण है।
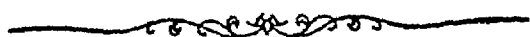
साम्यवाद और उत्पत्ति के साधन ।

हमारे वर्तमान समाज का अस्वाभाविक संगठन

(लेखक—श्रीयुत सेठ दामोदरस्वरूप)

यह बात सभी जानते हैं कि हमारे मनुष्य समाज का जो वर्तमान ढाँचा है, उसमें उन श्रमियों और किसानों की दशा, जो संसार की प्रत्येक वस्तु को उत्पन्न करते हैं, उस बेकार श्रेणी के लोगों की हालत से, जो न केवल किसी प्रकार का श्रम ही नहीं करते, बल्कि मज़दूरों और कृषकों के गाढ़े पसीनों की कमाई से निशिदिन गुलछर्रे उड़ाते हैं और जो वास्तव में समाज-रूपी शरीर के कोढ़ाङ्ग हैं, हजार दर्जा गई गुज़री है। एक मज़दूर किसी प्रकार दिन रात परिश्रम करके अपना शोणित-पसीना एक करके विविध प्रकार की वस्तुओं को तैयार करता है, पर जो चीजें वह तैयार करता है उन पर उसका कोई अधिकार नहीं है। वह मजूर बड़े-बड़े विशाल महलों को बनाता है। उन महलों को अपनी बनाई हुई अनेक प्रकार की सुन्दर-सुन्दर वस्तुओ से सुसज्जित करता है। पर उसका न उस महल पर कोई अधिकार है और न

उसकी सजावट की सामग्री ही पर। उसके भाग्य में तो वही छोटी सी अन्धी कोठरी है, जिसमें उसे न शुद्ध-पवित्र वायु मिल सकती है और न सूर्य की रोशनी। सजावट की सामग्री की तो बात ही क्या है, वहाँ तो रोजाना जरूरतों को पूरा करने की आवश्यक वस्तुयें भी नहीं मिलतीं, किसी सफाई पसन्द आदमी को तो वहाँ एक मिनट ठहरना भी कठिन हो जायगा। यही मजदूर शीशे की तरह साफ और सुन्दर सड़कें बनाता है; पर उसके क्वार्टर की सड़कों को तो सड़क कहना भी कठिन है। इसी तरह एक किसान दुनिया की अच्छी से अच्छी खाने की वस्तुएँ, बढ़िया अनाज, फल-फूल, दूध-दही, घी-मक्खन और मिठाइयाँ तैयार करता या तैयार करने का कारण है, पर वह और उसके बीबी बच्चे सुगमता से अपना पेट भी नहीं भर सकते। पर उस किसान की कमाई से जो धनी बने बैठे हैं और रत्ती भर भी काम नहीं करते वे केवल इन बढ़िया बढ़िया खाद्य पदार्थों का स्वाद ही नहीं लेते, बल्कि उनका आवश्यकता से कहीं अधिक उपयोग कर औषधियों द्वारा उनको हज़म करते तथा करने की निशिवासर कोशिश किया करते हैं।

यह संक्षेप में हमारे वर्तमान मनुष्य समाज का रूप और उसका ढाँचा—जहाँ न्याय और धर्म की छाया भी ढूँढ़े नहीं मिलती है। बड़े बड़े ईश्वरवादी भी समाज के इस ढांचे को देख कर और थोड़ा विचार कर अपने कानों पर हाथ रख लेते हैं और उन्हें यह विचारना पड़ता है कि वास्तव में ईश्वर है और यदि है तो क्या वह स्वयं न्याय या न्यायकारी है? पर नहीं, ईश्वर बेचारे का क्या अपराध है। अब तो धन ने, पूँजी ने ईश्वर को उठाकर ताक़ पर रख दिया है और समाज में न्याय और धर्म का प्रायः लोप हो हो गया है; क्योंकि जो जितना अधिक परिश्रम करता है, उतना

ही दुःखी और उसकी आर्थिक और सामाजिक दशा उतनी ही गिरी हुई है। शिक्षा और सभ्यता की दौड़ में वह उतना ही पीछे है। राजनीतिक क्षेत्र मे तो उसे कोई अधिकार प्राप्त ही नहीं है। दूसरी ओर जो रत्ती भर भी काम नहीं करते या नाम मात्र को काम करते है, उतनी ही अधिक अच्छी उनकी आर्थिक और सामाजिक दशा है, राजनीतिक अधिकारों के तो वे सर्वेसर्वा हैं ही। यहाँ एक बात ध्यान में रखने योग्य है। वह यह कि हमारे इस समाज मे अत्यधिक संख्या उन लोगो की है, जो निरन्तर कठिन परिश्रम करते हैं। बैठे २ खाने और मौज उड़ाने वाले तो इनकी संख्या के सामने उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। नतीजा यह निकलता है कि परिश्रम करने वालों की पतित और दीन हीन अवस्था के कारण हमारे समूचे राष्ट्र का आर्थिक, नैतिक तथा सामाजिक पतन बड़ी तेजी से बढ़ता जा रहा है।

अब यह प्रश्न उठता है कि जब देश की बहुसंख्या मज़दूर, और किसान है और वास्तव में अपने कड़े परिश्रम से वे सब कुछ उत्पन्न करते है, तो वे थोड़े से धनी लोगों के किस प्रकार गुलाम बने हुए है और क्यो इन मुट्ठी भर लोगों के हाथों चुपचाप इस प्रकार अन्याय और अत्याचार सहन करते हैं ?

इसमे तो सन्देह नहीं है कि मज़दूरों और किसानों की संख्या न केवल हमारे ही देश में बल्कि संसार भर मे अत्यधिक है और हर देश में वह धनी लोगों के हाथों तबाह और बर्बाद होरहे हैं।

ईश्वर और मजहब के नाम पर (सम्प्रदाय धर्म नहीं है, जैसा कि श्री सम्पूर्णानन्दजी ने 'जागरण' में अपने एक लेख द्वारा बताया है) मज़दूरों और किसानों पर अन्याय और अत्याचार किये जाते हैं। ऊपर के प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—प्रथम तो अशिक्षित होने और संसार की वस्तुस्थिति का ज्ञान प्राप्त न कर

सकने के कारण, उन्हे यह अनुभव ही नहीं होता कि धनी श्रेणी के लोग उनके साथ अन्याय और अत्याचार करते हैं। इस अनुभव को रोकने का तो पूँजीपतियों ने पहले ही प्रबन्ध कर लिया है। पूँजीपतियों और मजहबी मुल्लाओं और पुरोहितों का सदा ही परस्पर बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रहा है और यह एक दूसरे की सहायता ही से अपने स्वार्थों को सिद्ध करते हैं। पूँजीपति लोग यह समझ सकते हैं कि कभी न कभी मजदूर और किसान यह अनुमान कर सकते हैं कि वही लोग उनकी सारी विपत्तियों की जड़ हैं। यह समझ में आते ही वह बहुसंख्यक होते हुए क्षण-मात्र में अपनी विपत्तियों के स्रोत को नष्ट-भ्रष्ट कर सकते हैं। अतः उन्होंने पुरोहितों और मुल्लाओं के सहयोग से अवश्यम्भावी को रोकने का ढंग निकाला। मजहब और ईश्वर के यह ठेकेदार आरम्भ से ही मजदूरों और किसानों को यह पाठ पढ़ाते हैं कि संसार में सुख दुःख तो अपने हाथ की बात नहीं है। यह तो ईश्वर की मर्जी और तकदीर का खेल है। ईश्वर ने अपनी मर्जी से या तुम्हारे पूर्व जन्म के बुरे कर्मों के फल स्वरूप तुम्हे यह कष्ट दिये हैं, जिनका चुपचाप सहन करना ही तुम्हारा धर्म है। यह मनुष्य के हाथ की बात नहीं है। ईश्वर की इच्छा या कर्म फलों के विरुद्ध कार्य करने का परिणाम तुम्हारे संकटों को और भी बढ़ायेगा। हाँ, अगर चुपचाप ईश्वर पर भरोसा रखकर सब कुछ सहते रहोगे, तो अगले जन्म मे शायद (शायद इसलिये कि ईश्वर अनन्त है और उसकी इच्छा भी अनन्त है और फिर यह भी सम्भव है कि एक जन्म के बुरे कामों के फल कई जन्मों तक भोगने पड़ें) सुख मिले। खुदा, मजहब, और कर्म-फल या तकदीर के इस चक्कर में फँसकर यह भोले भाले मजदूर किसान अपने साथ होने वाले अन्याय और अत्याचार की जड़ को खोजने का

प्रयत्न ही नहीं करते। यदि पूँजीपतियों की सहायता के लिए पुरोहित और मुल्ला लोग न होते तो अब तक किसान और मजदूर कभी के चेत गये होते। इसीलिए पूँजीपति मजहबी प्लेटफार्मों से, मन्दिरों, मसजिदों और गिरजाओं से इसी प्रकार की मन गढ़न्त बातों का प्रचार कराते हैं। मजहबी आचार्यों को हजारों और लाखों रुपये देकर उनके सहयोग से एक अपवित्र गुट बना लेते हैं, यह गुट किसान मजदूर दोनों को बराबर गुलाम बनाये रखने की कोशिश करता रहता है। किसान और मजदूर अशिक्षित होने के कारण मुल्ले और पुरोहितों के इस फरेब को न समझ कर उसके जाल मे फँसते रहते है। ये बेचारे इतना सोचने में भी असमर्थ रहते हैं कि क्या वह सर्व शक्तिमान और सर्व व्यापक ईश्वर, जिसको वह सन्तान हैं इतना अन्यायी भी हो सकता है कि वह अपनी मेहनत करने वाली सन्तान की अत्यधिक संख्या को इस प्रकार भूखो मारेगा और थोड़े से आलसी लोगों को इस प्रकार सुखी और सम्पन्न बनाकर उन्हे संसार के सारे भोग विलास का स्वामी बना देगा। वह कभी नही विचार करते कि क्या मनुष्यों की इतनी अधिक संख्या ने पिछले जन्म में इतने बड़े पाप किये थे कि वह और उनकी सन्तान तो साधारण शिक्षा भी प्राप्त न कर सकें और मुट्ठी भर पूँजीपतियों ने पिछले जन्म में इतने बड़े तप और त्याग किये कि वह विश्व की सम्पूर्ण शक्तियों और सुविधाओं को हथियाये हुए हैं। सच बात तो यह है कि, यदि प्रारम्भ से ही मजदूर किसानों को उचित शिक्षा-दीक्षा मिली होती और ईश्वर मजहब और तकदीर के पवित्र शब्दों का इस प्रकार दुरर्थ न किया होता, तो संसार में आज न पूँजीवाद का इतना जोर होता और न साम्यवाद के प्रचार का। पर यहाँ तो चोर की दाढ़ी मे तिनका वाली बात थी। पूँजीपति यह समझते थे कि सच्ची शिक्षा मज-

दूरों और किसानों की आँखें खोल देगी और वे अपने मित्र और शत्रु तथा हानि और लाभ में तमीज करने लगेंगे, इसीलिये उन्होंने उनके बीच सच्ची विद्या का प्रचार न कर पाखण्ड का प्रचार किया। इसी का परिणाम है कि आज कठोर श्रम करने वाले किसान और मजदूर दरिद्र हैं, अशिक्षित हैं, नीच हैं, और गुलाम हैं। पैसे वाले धनी हैं, धर्मात्मा हैं, शिक्षित हैं, और सब तरह के कुकर्म करते हुए भी समाज में आदर और मान के पात्र हैं। ऐसा है ढाँचा आजकल के हमारे मनुष्य समाज का, जिसमें धन ही केवल एकमात्र शक्ति है, धन ही धर्म है और यह कहना अत्युक्ति न होगा कि ईश्वर का स्थान भी धन ही ने ले लिया है। ईश्वर का नाम तो नाममात्र ही को रह गया है। परिश्रम से, ईमानदारी से, बिना किसी को कष्ट पहुँचाये, समाज की सच्ची सेवा करके आधे पेट खाने वाला किसान या मजदूर नीच है, जलील है, अछूत है, और तिरस्कार के योग्य है। वह मन्दिरों से देव दर्शन भी नहीं कर सकता, सार्वजनिक कुओं से पानी भी नहीं पी सकता। पर हाँ, ग़रीबों का खून चूस कर बेईमानी से, फ़रेब से, बिला परिश्रम के, ज़रूरत से ज़्यादा खाने और उड़ाने वाला, दुनिया भर के पाप करने वाला धनी मालिक है, आक़ा है, स्वामी है और समाज का नेता है। राजा है, और अपने सामने मनुष्यों की जरखरीद गुलामों की तरह गर्दनें झुकवाता है, नहीं नहीं साष्टांग प्रणाम कराता है। यह सब स्वांग और निन्दनीय नाटक सदियो से खेले जा रहे हैं और खेले जाते रहेंगे, जब तक कि संसार के सारे किसान और मजदूरों की प्रचार द्वारा आँखें नहीं खोल दी जाती हैं। यह प्रश्न किया जा सकता है कि आजकल तो बहुत से किसान और मज़दूर इस सत्य को समझने लगे हैं कि वह ईश्वर के कोप, तकदीर की खराबी अथवा अपने पापों के फल-

स्वरूप नहीं, बल्कि पूँजीपतियों के अन्याय का शिकार हो रहे हैं, फिर भी वह इस अन्याय को किस प्रकार सहन करते हैं ? इसका उत्तर यही है कि हमारे वर्तमान समाज का यह ढाँचा ही इस प्रकार बन गया है कि वह उपरोक्त अन्याय को रोक ही नहीं सकता क्योंकि इस समाज मे धन की उत्पत्ति के, वितरण और विनियम के सारे साधन एक विशेष श्रेणी के हाथ में आगये है, और वे सहज मे अपनी मर्जी से उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं हैं। अतः जबतक पुनः निर्माण समाज का इस प्रकार न हो कि उपरोक्त सम्पूर्ण साधन उत्पादक श्रेणी के हाथ में आ जाये, तब तक वास्तविक स्थिति मे परिवर्तन असम्भव है। इसी परिवर्तन का नाम साम्यवाद होगा। और जब इस प्रकार के समाज का निर्माण हो जावेगा, तो वही Socialist State या साम्यवादी राज होगा।

उत्पत्ति के साधन का अर्थ।

उत्पत्ति के साधन का अर्थ उन वस्तुओं से है, जिनके द्वारा दूसरी चीजों की उत्पत्ति होती है। जैसे अनाज, फल-फूल, कपास, तिलहन इत्यादि–खाने की और दूसरी आवश्यक चीजो की उत्पत्ति बिना पृथ्वी के नहीं हो सकती। छपाई की पुस्तके और समाचार पत्र इत्यादि बिना छपाई की मशीन के, कपड़ा बिला बड़ी २ मिलों और कारखानों के पैदा नही हो सकते। पर उत्पत्ति के यह सब साधन ज़मीन, मशीने और कल कारखाने, धन इत्यादि सब वर्तमान समाज मे एक विशेष श्रेणी के मिलकियत हो गये हैं, जिनको ज़मीन्दार कारखानादार या पूँजीपति के नाम से पुकारा जाता है। इसलिये करोड़ो किसान और मजदूरो को लाचार होकर इन लोगों की गुलामी करनी पड़ती है और उनके हाथो अन्याय को सहन करना पड़ता है, क्योंकि उत्पत्ति के इन साधनो पर अधिकार प्राप्त किये बिना किसान या मजदूर की मेहनत का फल उसे नहीं

मिलता। उसका फल तो उन साधनों पर अधिकार रखने वाले को पहुँचता है। वह इन भूखों और बेबसों की मेहनत मनमानी मजदूरी देकर खरीद लेता है। एक समय था कि जो उत्पत्ति के यह साधन न तो इतने महँगे थे और न इतने पेचीदा। किसी समय एक लोहार अपनी छोटी सी दूकान में पुरानी चाल के मामूली औजारों से अपना काम चला लेता था। दर्जी हाथ से कपड़े सी लेता था और किसान फसल अच्छी होने पर थोड़ी सी जमीन से अपना और बीबी बच्चों का पेट भर लेता था।

मजदूरों के गुलामी का प्रारम्भ।

परन्तु अठारवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति ने पुरानी चाल के मामूली औजारों को एक प्रकार से बेकार कर दिया। इस विश्व-व्यापी क्रान्ति के फल स्वरूप, वाष्पयन्त्र, तरह-तरह की कताई की मशीनें और पावरलूम की ईजाद हुई। यह मशीनें पुरानी चाल की मशीनों के मुकाबिले मे थोड़े समय में अच्छा और अधिक माल तैयार कर लेतीं थीं। पर थीं यह बड़ी महँगी। इसलिये जिनके पास प्रचुर धन था, वेही इनको बनवा या खरीद सकते थे। दूसरे शब्दों में इस औद्योगिक क्रान्ति ने उत्पादन के तरीकों में हल-चल मचा दी और उन्हे बिलकुल बदल दिया। साथ ही जो मजदूर इन मशीनों के चलाने में लगे थे, उनके जीवन में भी बड़ा भारी परिवर्तन होगया। धीरे धीरे कारीगरों के औजार बेकार हो गये और उद्योग धन्धों को पूँजीपतियों ने हथिया लिया। शीघ्र ही इन लोगो ने उत्पत्ति के अन्य साधनों पर भी अपना अधिकार जमा लिया। पहले यह प्रयोग कपड़े के व्यवसाय पर हुआ। धीरे धीरे दूसरे सब व्यापार भी इसी क्रांति के प्रभाव में आगये। पुराने छोटे छोटे उद्योग धन्धे नष्ट होगये। छोटे छोटे कारीगरों की स्वतन्त्रता समाप्त होगई। और नये गुलाम मजदूर वर्ग का जन्म

हुआ। इस प्रकार औद्योगिक संसार में दो नवीन दल पैदा होगये। एक वह दल जिसके हाथ में उत्पत्ति, वितरण और विनियम के साधन थे, जिनके कारण वे लोग स्वामी बन बैठे और दूसरा दल उन मजदूरो का, जिनका सब कुछ छिन गया था, और जो अपनी मेहनत बेचने के लिये मजबूर होकर गुलाम बन गये।

किसानों की गुलामी।

ऊपर हम लिख चुके हैं, कि किसी जमाने मे एक मजदूर थोड़ी सी जमीन पर खेती करके साधारणतः अपना पेट भर लेता और अपनी दूसरी जरूरतो को भी पूरा कर लेता था। औद्योगिक क्रांति के फल स्वरूप खेती बाड़ी के लिये भी नयी-नयी मशीनें, खेत जोतने बोने, और काटने के लिये तैयार हो गयीं और मशीनों की तरह यह भी मशीने जल्द और अधिक काम करती थीं, पर थीं ये भी वैसी ही महँगी। ये लाभदायक तभी सिद्ध होती थीं जब इनके रखने वाले के पास अधिक काम हो और वह बराबर इनसे काम लेता रहे। थोड़ी सी जमीन के मालिक के लिए तो ये बहुत थोड़े समय काम में आ सकती थीं। अधिक समय बेकार रहतीं और खर्च भी बहुत होता था। इसलिये जिन लोगो के पास बड़ी-बड़ी जमींदारी थी, काफी धन भी था, उन्होंने ही इन मशीनों को खरीद कर इनसे काम लिया। इसमे उनकी जमीन की पैदावार बहुत बढ़ गयी। खर्च घट गया और बाजार मे अनाज का भाव गिर गया। वे छोटे-छोटे किसान जो रात-दिन मेहनत करते थे, उनका काम मशीन के एक घण्टे ही के बराबर होता था और वे अपनी पैदावार से अपनी दूसरी जरूरतों का पूरा करना तो क्या पेट भरने में भी समर्थ नही रहे। वही दशा उनकी हुई, जो मजदूरों की हुई थी। अर्थात्—उन्होंने भी लाचार होकर अपनी मेहनत को जमीन्दारों के हाथ बेचना स्वीकार कर लिया। जिन्होंने

यह न किया, या न कर सके, वह शहरों के कारखानों में अपनी मेहनत बेचने लगे। इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति ही किसानों और मजदूरों की गुलामी की जिम्मेदार है।

कांग्रेस के समाजवादी दल के आलोचकों को उत्तर।

[लेखक—जयप्रकाश नारायण]

हमारे सामने एक समस्या, कांग्रेस के साथ हमारे सम्बन्ध की है। यह सीधी-सी है और आसानी से हल हो सकती है। पहले तो हमारा सङ्गठन कांग्रेस के अन्दर है। इसी बात से हमारा सम्बन्ध बहुत हद तक निश्चित हो जाता है। जब हमारा सङ्गठन कांग्रेस का अङ्ग है तो विरोध या मुख़ालिफत का कोई सवाल ही नहीं है; बल्कि हमारे संघ को तो कांग्रेस के कार्यक्रम में, उन बातों को छोड़ कर जिनमे हम कांग्रेस की किसी ख़ास नीति से असहमत हों, भाग लेना और उसे अपना ही समझना चाहिये। साथ ही कांग्रेस के अन्दर अपने विचारों का प्रचार करना, अपने तरीके पर काम करना, और कांग्रेस की ऐसी नीतियों की जो हमको जनता के हित की न जँचे, समालोचना और विरोध तक करना—हमें अपने इन अधिकारों को अल्प-संख्यक दल की हैसियत से काम में लाना चाहिये।

मैं कुछ उस टीका-टिप्पणी के सम्बन्ध में कह देना चाहता हूँ जो हमारे ख़िलाफ की गई है। टीका-टिप्पणी उग्र और नरम दोनों ही पक्षो ने की है। बहुत-सी समालोचना का कारण ग़लतफ़हमी और हमारे आन्दोलन को ठीक तरह से समझने की कमी रही है। दाहिने पक्ष का कहना है कि हम लोग कांग्रेस में फूट पैदा कर रहे हैं, राष्ट्रीय युद्ध को कमज़ोर बनाते है और सिर्फ बातें करते हैं। फूट के सम्बन्ध में यह समझ लेना आवश्यक है कि हर एक सङ्गठन को सङ्कटों मे से गुज़रना पड़ता है और उसकी प्रकृति का विकास और परिवर्तन हुआ करता है। कांग्रेस के अन्दर फूट डालने की आवाज़ भी पहली ही बार नहीं उठी है। यदि समाजवादी आन्दोलन के कारण 'नरम विचार वाले' और दूसरे 'बरसाती देशभक्त' कांग्रेस को छोड़ जाते हैं तो उसको नुकसान की बजाय फायदा ही होगा। रही राष्ट्रीय युद्ध को कमज़ोर बनाने की बात, उसके सम्बन्ध में हम तो यह समझते हैं कि कमज़ोर करना तो बहुत दूर, हमारा आन्दोलन तो एक वास्तविक सार्वजनिक आन्दोलन खड़ा करने के लिये आधार तैयार करके राष्ट्रीय युद्ध को खूब मज़बूत करेगा और उसे आगे बढ़ायेगा। हम सिर्फ बातून हैं—इसका जवाब देना मै बेकार समझता हूँ। हम लोगों ने राष्ट्रीय युद्ध के गहरे घमासान में उतना ही भाग लिया, जितना किसी भी दूसरे समुदाय ने। मै तो इतना ही कह सकता हूँ कि जिम्मेदार कांग्रेस वालो को इस तरह की टीका-टिप्पणी में दिलचस्पी लेना कोई शोभा नही देता।

उग्र समालोचकों ने हमारे असली सवालों को ठीक तरह से समझने में खास तौर से कमी की है। इस पक्ष की ओर से मुख्य समालोचना यह की गई है कि कांग्रेस के अन्दर संघ बनाना गलती है। समाजवाद और कांग्रेस इन शब्दों को एक दूसरे का मुक़ा-

लिफ़ कहा जाता है; लेकिन हिन्दुस्तान की अपनी ख़ास परिस्थिति में इन दोनों का मुख़ालिफ़ होना तो दूर, बल्कि दोनों परस्पर सहायक और आश्रित हैं। साम्राज्यवाद के अन्त के बिना समाजवाद मूर्खता की बात है। इस देश में राष्ट्रीय महासभा ही एक ऐसी राजनीतिक संस्था है, जिसने ब्रिटिश साम्राज्य के ख़िलाफ़ बड़े-बड़े युद्ध चलाये हैं और यह सोचने की कोई वजह नहीं मालूम पड़ती कि वह इस मञ्जिल पर अपने इस साम्राज्यवाद विरोधी कार्यक्रम को त्याग देगी। मेरा मतलब यह नहीं है कि कांग्रेस, जैसी अवस्था में इस समय है, वह साम्राज्यवाद को उखाड़ सकेगी। यही काम तो हमारा है। हम को कांग्रेस का विकास इस तरह करना चाहिये कि वह ऐसी ही संस्था बन सके। कांग्रेस के बाहर संघ को क़ायम करने का दूसरा रास्ता अगर वह संभव भी हो, तो शक्ति को बेवकूफ़ी के साथ बुरी तरह बरबाद करना है। मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं है और मैं विश्वास करता हूँ कि आप में से भी किसी को न होगा, कि हमारे लिये कांग्रेस पर ऐसा प्रभाव डालना और उसमें ऐसी तबदीली करना कि वह वाक़ई साम्राज्यवाद विरोधी संस्था बन सके, बिलकुल सम्भव है। जिन लोगों का यह विश्वास नहीं है उनके लिये हमारे इस आन्दोलन में निश्चय ही कोई स्थान नहीं है।

कांग्रेस समाजवादी संघ किसी एक दल का संघ नहीं है। वह सिर्फ़ मज़दूरों का भी संघ नहीं है। वह ऐसा राजनीतिक संघ है, जिसके प्लेटफ़ार्म पर सभी साम्राज्यवाद-विरोधी मिल सकते हैं, और उसका कार्य ऐसे सभी लोगों को साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने के लिये मार्ग दिखाना और हिन्दुस्तान में जनता के लिये सच्चा स्वराज्य क़ायम करना है।

क्या समाजवादी गांधीजी पर खड्हस्त हैं ?

[लेखक—श्री सम्पूर्णानन्द]

'आज' के विशेषांक मे मैंने जो लेख लिखा था उसकी जो आलोचना श्री गहमरीजी ने की है उसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ क्योंकि इसी बहाने मुझे समाजवादी समुदायका दृष्टिकोण फिर से जनता के सामने रखने का अवसर मिलता है। गहमरीजी के कई आक्षेप ऐसे हैं जो समाजवाद के जन्म से ही उसपर किये जा रहे है, भारत मे भी कांग्रेस समाजवादी दल पिछले सवा साल से उनका उत्तर देता चला आ रहा है, फिर भी जब गहमरीजी जैसे विचारशील व्यक्तियों को उन्हें उठाने की आवश्यकता प्रतीत होती है तो उनके सम्बन्ध मे पुनः कुछ लिखना पढ़ना अनावश्यक नहीं हो सकता।

गहमरीजी कहते हैं कि मै महात्माजी पर खड्गहस्त हूं। मैं जानता हूँ कि उनका यह आशय नहीं है कि मैं महात्माजी के व्यक्तित्व का विरोधी हूँ। यह बात है भी नहीं। वह इस देश की महती विभूति हैं, इस नाते मैं उनका आदर करता हूं। परंतु यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मुझ जैसे लोगो की सम्मति से अब उस युग का अन्त होना चाहिये जिसका प्रवर्तन महात्माजी के द्वारा हुआ था। लोग पूछते है कि समाजवाद कहां तक गांधीवाद का

विरोधी है। इस प्रश्न का उत्तर गांधीवाद की परिभाषा पर निर्भर है। यदि गांधीवाद का अर्थ सौजन्य, आत्मसंयम, शौर्य्य, आत्मोत्सर्ग है तो समाजवाद उसका सदैव आदर करेगा। यदि गांधीवाद का अर्थ अहिंसा है तो समाजवाद उसको नीति के रूप में स्वीकार करता है। समाजवादी हिंस्र पशु नहीं होता। वह भी शांति चाहता है पर यदि आवश्यक और सम्भव हो तो शस्त्र प्रयोग को सर्वथा त्याज्य नहीं मानता। यदि गांधीवाद का अर्थ मशीनों का बहिष्कार है तो समाजवाद में उसके लिये स्थान मिलना कठिन है और अन्त में, यदि गांधीवाद का अर्थ वर्गबाहुल्य और वर्गसहकार है तो समाजवाद उसको कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। यह 'यदि' योंही नहीं लिख दिया गया है। स्वयं महात्माजी ऐसा कह चुके हैं कि उनका स्वराज्य रामराज्य होगा जिसमें राजा और रंक दोनों सुख से रह सकेंगे। समाजवादी के स्वराज्य में न राजा होगा, न रंक। अतः इस दृष्टि से प्रत्येक समाजवादी गांधीवाद और उसके प्रतीक गांधीजी पर खड्गहस्त कहा जा सकता है। फिर, समाजवादी ऐसा भी मानते हैं कि जिन लोगों के हाथ में इस समय कांग्रेस का नेतृत्व है वह वर्ग-सहकार के पक्षपाती अथच सम्पन्न वर्गों के हितों के पूर्ण-रक्षक अर्थात् असंपन्नों और शोषितों के हितों के रक्षण में असमर्थ हैं। इसलिये पदे-पदे उनके दिमाग में सुलह समझौते की बात आ जाती है। यदि कांग्रेस के अन्दर उन वर्गों का उचित प्रतिनिधित्व हो जो स्वभावतः क्रांतिकारी हैं तो उसकी कार्यशैली बदल जाय। इन वर्गों के प्रवेश का अर्थ होगा नेतृत्व का बदल जाना। समाजवादी दल यह परिवर्तन चाहता है अतः लक्षणया वह महात्माजी पर खड्गहस्त कहा जा सकता है।

मैने एक जगह तो यह कहा है कि कृषकादि शोषितों के संघटन का आयोजन नहीं हो रहा है, जिसका तात्पर्य यह निकला कि

युद्ध के लिये तैयारी नहीं हुई है, दूसरी ओर मैंने गांधी-अर्विन या इस प्रकार के अन्य समझौतों का विरोध किया है। इसमें गहमरी जी को विरोधाभास देख पड़ता है। यदि विरोध है तो इसमें मेरा कुसूर नहीं है। आलोचक का काम वस्तुस्थिति को सामने रखना है। यदि वह वस्तुस्थिति तर्कशास्त्र के नियमो का पालन नही करती तो इसमें आलोचक का कोई दोष नहीं है। हम ऐसा मानते हैं कि कि पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति या साम्राज्यशाही के मूलोच्छेद के लिये जिस तैयारी की आवश्यकता है वह न थी, न है। परन्तु बिना इस तैयारी के ही पूर्ण स्वाधीनता के नाम पर लड़ाई छेड़ दी गयी। उसमें सफलता नहीं मिली। क्यो नही मिली, यह भी विचारणीय है पर यहां मैं इसपर विचार नही करता। पर सफलता न मिलने पर क्या करना चाहिये था? क्या आजतक किसी भी स्वाधीनता के नाम पर लड़नेवाले समुदाय ने ऐसा ओछा सौदा किया है? 'ओछा सौदा' इसलिये कहता हूं कि जिन शर्तों पर सुलह की गयी वह आयरलैण्ड और मिश्र की सुलह की शर्तों के सामने लज्जा-जनक और हास्यास्पद है। सुलह नहीं करनी चाहिये थी। कांग्रेस भले ही गैर कानूनी बनी रहती, जो असली तैयारी थी उसमे लगना चाहिये था। फिर मौका आता, फिर कोई नया आंदोलन खड़ा होता। यह सुलह और समझौता करके अस्थायी शान्ति मोल लेने की बुरी प्रवृत्ति सर्वथा हेय है। इस दृष्टि से विचार करने से मेरी बातो में विरोध नही रह जाता। यदि रह जाता है तो वह इसलिये कि जीवन तर्क से बड़ा है। बिना तर्कशास्त्र से सलाह लिये ही लड़ाई छेड़ी और फिर बन्द कर दी गयी। ऐसी दशा मे विरोधाभासकी दुहाई देना व्यर्थ है।

गहमरीजी मुझसे पूछना चाहते हैं कि जिस प्रकार की बात हम समाजवादी करते हैं, अर्थात् स्वराज्य हो जाने के पहिले पूंजी-

पति आदि वर्गों से लड़ाई ठान लेना, यह कहीं अन्यत्र हुई ? इसका उत्तर मैं एक प्रश्न से देना चाहता हूं—क्या जैसी परिस्थिति भारत में है उसमें कोई दूसरा देश स्वतन्त्र हुआ भी है ? यह तो गहमरीजी जानते हैं कि भारत जैसे देशों को 'अर्ध-औपनिवेशिक' कहते हैं। इनमें स्वदेशी पूंजीपतियों को मिला कर विदेशी पूंजीपति शासन करते हैं। एक और कठिनाई है। अभी यहाँ राजे महाराजे भी मौजूद हैं। ऐसी दशा में यहाँ यह देखना ही होगा कि कौनसा वर्ग पूर्णतया क्रान्तिकारी है और हो सकता है। यह वर्ग वही होगा जो समन्तात शोषित और दलित है और इसको आगे बढ़ाने या साथ लेने का अर्थ है दूसरे वर्गों से संघर्ष मोल लेना। यह बात तो गहमरीजी के समझ में आती है कि देश और विदेश की सारी पुरानी प्रथा, सारे पुराने अनुभव को भुलाकर भारत मनसा वाचा कर्म्मणा 'सत्य और अहिंसा' का अवलम्बन करके स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करे, पर यह वह नहीं देखते कि वर्तमान राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में वह सर्ववर्ग-सहकार का मार्ग छोड़कर ही अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकेगा। किमाश्चर्य्यमतः परम् ? यह न केवल अनावश्यक वरन् अनुचित भी है कि प्रत्येक राष्ट्र लाठी से तोप तक पहुँचने में उतना ही समय लगावे जितना समय आरम्भ से तोप के आविष्कार तक लगा है। समाजवादी मार्ग का तो नयी सरकार की स्थापना के पहिले, और पीछे और कहीं नहीं तो रूस में ही सही, कुछ उदाहरण मिलता भी है, सत्य और अहिंसा का तो कहीं कभी भी कोई उदाहरण नहीं मिलता। जब नया प्रयोग ही करना है तो हमारा प्रयोग क्यों न किया जाय जो अधिक तर्कसंगत है ?

समाजवादी और रचनात्मक कार्यक्रम।

रचनात्मक कार्यक्रम के सम्बन्ध में श्री भगवानदासजी ने गह-

मरीजी को कुछ उत्तर दिया है। हमारा उत्तर अंशतः उससे भिन्न है। वह तो यह भी, वह भी मानने को तैयार हैं। हम तो यह कहते हैं—हमारा कार्यक्रम ही, दूसरा बिल्कुल नहीं। कारण स्पष्ट है। समाजवादियों का तो दृढ़ विश्वास है कि राजसत्ता अपने हाथ में आने के पहिले रचनात्मक काम नही हो सकता। बिना जमींदारी, मालगुजारी लगान आदि के कानूनों को एकदम बदले ग्राम सुधार का नाम लेना प्रतारणा मात्र है। कुछ ऐसा ही समझ कर महात्माजी की सलाह से श्री राजगोपालाचारी उसी असेम्बली द्वारा हरिजनों के लिये कानून बनवाने गये थे, जो इन महानुभावों की आँखों में शैतान का घर थी। हमारी सारी चेष्टा शक्तिसंचय के लिये ही होनी चाहिये। जो प्रयत्न, जो आन्दोलन, इस काम में सहायक नहीं है वह व्यर्थ ही नहीं, हानिकारक भी है। जिस भारत को आज जबरदस्ती इतनी महंगी सरकार का बोझ उठाना पड़ रहा है, जिसको फौज, पुलिस, अदालत, शिक्षालय आदि पर करोड़ो रुपया खर्च करना पड़ रहा है, जिसको करोड़ों रुपया विदेश भेजना पड़ता है, वह कोई रचनात्मक काम नहीं कर सकता। धार्मिक सुधार तक के लिये सिक्खो को सरकार से टक्कर लेनी पड़ी थी। जिधर जाइये द्वार बन्द है। अतः हमारा काम है अपने उस एक लक्ष्य के लिये प्रत्यक्ष प्रयत्न करना। इसके लिये सुधारक मनोवृत्ति घातक है। उन मनोवृत्तियो को बराबर दूर करना होगा।

हमारा यह काम है कि श्री भगवान्दास जी के शब्दों में स्वराज्य की व्याख्या कर डालें, यह तय कर लें कि जो स्वराज्य हम चाहते हैं वह कैसा होगा, उसमें किसको क्या अधिकार होगा। फिर उन लोगों को, हमारे शब्दों मे उन वर्गों—क्योंकि हमारे विचार में वर्ग-बाहुल्य और वर्ग-सहकार के आधार पर कोई संतोष-जनक योजना नहीं बन सकती—उस स्वराज्य की प्राप्ति के लिये

संघटित करें। यह संघटन रचनात्मक नहीं हो सकता, विनाशात्मक ही हो सकता है। अपने नित्य के संघर्ष से ये वर्ग वह बल प्राप्त करेंगे जो अन्तिम मोर्चे में काम आयेगा।

किसानो और मजदूरो के संघटन का क्या आधार हो सकता है?

गहमरीजी का ख्याल है कि हम लोग श्रमिकों और कृषकों का हवाई संघटन करना चाहते हैं। आश्चर्य है कि वे ऐसा सोचते हैं। वस्तुतः यह आक्षेप तो उस संघटन के बारे में किया जा सकता है जिसका जिक्र अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पटना वाले रचनात्मक कार्यक्रम में है और जो बम्बई मे दुहराया गया। आप मजदूरों से कहते हैं—संघटित हो। वह पूछते हैं—किसलिये? यदि आप कहे कि संघटित होकर अपना काम बनाओ और हमारे स्वराज्य-युद्ध में भी मदद दो तो वह पूछ सकते हैं—हम अपना कौनसा काम बनायें? स्वराज्य होने पर हमको क्या मिलेगा? इसका जवाब इतने से नही हो सकता कि "तुम सुखी रहोगे।" वह कह सकते हैं कि यूरोप और अमेरिका में स्वराज्य है पर वहाँ के मजदूर सुखी नहीं है। यदि आपके स्वराज्य में भी मिल-मालिक रहेंगे तो हमको यह विश्वास कैसे हो कि हम सुखी होंगे। यह प्रश्नोत्तर काल्पनिक नहीं है। मजदूरों से मिलिये, फिर देखिये कि वह यह प्रश्न उठाते हैं या नही। मजदूरों का संघटन कैसे होना चाहिये, यह तो गहमरी जी अखिल भारतीय मजदूर संघ से, जिसके मातहत प्रायः सभी श्रमिक संस्थाएँ हैं, देख लें। उसका आधार आर्थिक है और उसकी अपनी राजनीतिक नीति है। वे ऐसा स्वराज्य चाहते हैं जिसमें पूंजीपति न हो। पदे पदे मिल-मालिको से संघर्ष (सहयोग नहीं) करते हैं। इसी तरह जमींदारी प्रथा के अन्त करने के आधार पर ही कृषकों का संघटन हो सकता है। कृषक आपके ऐसे स्वराज्य के लिये क्यों जान दें जिस

जमींदार उसको सताने के लिये मौजूद रहेगा ? यदि कांग्रेस इन महाशक्तियों से काम लेना चाहती है तो उसे उनको इसी प्रकार का वचन देना होगा और इस प्रकार के संघटन के लिये तैयार रहना होगा। ऐसा संघटन देश में तो शुरू हो गया है, कांग्रेस उसके प्रति क्या रुख रखेगी यह वह जाने। हम समाजवादी तो अपनी राय दे चुके है। हम तो ऐसा मानते है कि इन शोषित वर्गों के वर्गहितो के आधार पर ही इनका संघटन हो सकता है और यही संघटन श्रेयस्कर हो सकता है।

असली और नकली साम्यवाद

[लेखक—आचार्य नरेन्द्रदेव]

जब डॉक्टर अनसारी ऐसे महानुभाव नब्बे फीसदी साम्यवादी होने का दावा करते है और साथ-साथ इस बात पर खुशी भी जाहिर करते हैं कि कांग्रेस को साम्यवाद से कोई खतरा नहीं है, तो मैं इसकी जरूरत महसूस करता हूँ कि खरे और खोटे का फर्क साफ कर दिया जाय, जिसमें असली और नक़्ली वस्तु की पहचान में कोई दिक्कत न हो। मैं डाक्टर महोदय तथा किसी दूसरे सज्जन की नेकनीयती और ईमानदारी पर किसी प्रकार का हमला नहीं करता। मैं मानता हूँ कि अपने देश में बहुत से ऐसे सज्जन हैं, जो निहायत ईमानदारी के साथ सच्चे दिल से यह

सरल विश्वास रखते हैं कि साम्यवाद के स्वरूप के सम्बन्ध में धारणा उन्होंने बना ली है, वही ठीक है। इनमें बहुत से ऐसे सज्जन हैं, जो साम्यवाद के वास्तविक स्वरूप से अपरिचित हैं; उन्होंने वैज्ञानिक साम्यवाद का अध्ययन तक नहीं किया है। वैज्ञानिक साम्यवाद गंभीर चिन्तन और अध्ययन का विषय अवश्य है, तिसपर भी उसके स्थूल सिद्धान्तों के समझने में कोई कठिनाई नहीं प्रतीत होती। बहुत से हमारे ऐसे भाई भी हैं, जो वैज्ञानिक साम्यवाद के मौलिक सिद्धान्तों को जानते हुए भी अपनी एक भिन्न कल्पना को ही सच्चा साम्यवाद मानते हैं।

पहले तो हमें ऐसे लोगों का विचार करना है जो कल्पना के साम्राज्य में स्वच्छन्द विचरण करते हैं और तरह-तरह के हवाई महल बनाया करते हैं। जो देश वर्तमान काल में हीन दशा को प्राप्त हो गया है और जो अतीत के गौरव की कथा से विशेष रूप से प्रभावित है, वह अतीत में ही स्वर्ण-युग की स्थापना करता है और जब कभी वह अपनी उन्नति की बात सोचता है, तो वह उसी स्वर्ण-युग को फिर से वापिस लाने की चेष्टा करता है। ऐसे देश में एक ऐसे समुदाय का पैदा हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक है, जो विश्वास करता है कि अतीत का समाज ही एक आदर्श समाज था जिसमें गरीब और अमीर का फर्क नहीं था और जिसमें सारी प्रजा सुखी और समृद्ध थी, वह एक क्षण के लिए भी नहीं सोचता कि अतीत का वापिस आना कितना असम्भव है। वह इस बात को मानने को भी तैयार नहीं है कि अतीत उतना सुन्दर और मनोरम नहीं था जितना कि वह सोचता है। हम यह मानते हैं कि पूंजीवादी पद्धति कि बुराइयाँ प्राचीन समाज में नहीं पाई जाती थीं; पर इसमें भी सन्देह नहीं है कि उसकी निज की बुराइयाँ कुछ कम न थीं। प्राचीन समाज में इस बात की भी आशा नहीं की जा सकती

थी कि श्रमजीवियों का कोई संगठन बन सकेगा, जो उनको अत्याचारों से छुटकारा दिलावे।

इस विचार के लोग साम्यवाद के प्रभाव को बढ़ते देखकर अपनी कल्पना तथा साम्यवाद के सिद्धान्तों मे सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा करते हैं। जिस प्रकार विज्ञान के इस युग में प्रत्येक मजहब, जो इस नये वातावरण में जीवित रहना चाहता है, इस बात को साबित करने की कोशिश करता है कि उसके सिद्धान्त विज्ञान सम्मत हैं, उसी प्रकार प्रत्येक समुदाय, जो राजनीतिक-क्षेत्र में अग्रसर होना चाहता है, उसे विवश होकर यह दिखलाना पड़ता है कि उसकी कल्पनाएँ साम्यवाद के सिद्धान्त के विरुद्ध नहीं हैं। जो लोग अतीत मे ही स्वर्ण-युग की कल्पना करते हैं, वह इस बात के दिखलाने की चेष्टा करते हैं कि अतीत का समाज ही साम्यवाद के सच्चे सिद्धान्तो पर आश्रित था। पाश्चात्य देशों तो ईसाइयो ने इस प्रकार के प्रयत्न किये हैं। इसी के फल-स्वरूप वहाँ Christian Socialism पाया जाता है। इसके अनुयाइयों का कहना है कि क्रिश्चियन धर्म और साम्यवाद एक दूसरे के [illegible]ये नितान्त आवश्यक हैं और क्रिश्चियन धर्म ही साम्यवाद का नैतिक आधार है। उनका यह भी विश्वास है कि साम्यवाद की विचार-पद्धति का जन्म ही इसी धर्म से हुआ है। यदि अपने देश में भी इस प्रकार के प्रयत्न किये जावें, तो मुझको आश्चर्य न होगा।

हिन्दू चाय और मुसलिम चाय की तरह हिन्दू साम्यवाद और मुसलिम साम्यवाद के पैदा होने मे देरी न लगेगी।

वैज्ञानिक साम्यवाद को ऐसे विचारों का विरोध करना पड़ेगा, क्योंकि ये विचार निराधार और कल्पित हैं और इसलिये उनके सफल होने की कोई भी संभावना नहीं है। अतीत के पुनरुज्जीवन का प्रयत्न बालू मे से तेल निकालने के प्रयत्न की तरह सर्वथा

विफल होगा। ऐसे विचारों का प्रचार कर हम देश को गलत रास्ते पर ही ले जावेंगे। केवल कल्पना के बल से हम अपना अभीष्ट सिद्ध नहीं कर सकते। यदि हम मशीन-युग की बुराइयों से बचना चाहते हैं, तो उसका यह तरीक़ा नहीं है कि हम पीछे क़दम रक्खें और सारी औद्योगिक उन्नति का खात्मा करके संसार की ग़रीबी और मुसीबत को और भी बढ़ा दें। इन बुराइयों के अन्त करने का एकमात्र तरीक़ा वैज्ञानिक साम्यवाद है। इस तरीके के बर्तने से हम पूंजीवादी प्रथा के लाभ को सुरक्षित रखते हुए उसके दोषों को दूर कर सकेंगे, अन्यथा नहीं।

इतिहास से पता चलता है कि प्राचीन काल में कई देशों में भूमि व्यक्ति की सम्पत्ति न होकर समाज की सम्पत्ति मानी जाती थी। रूस में ऐसी ग्राम-संस्थाएँ १९ वीं शताब्दी तक पाई जाती थी। भारतवर्ष के साहित्य से भी ऐसी संस्थाओं की सत्ता का पता चलता है। यद्यपि साम्यवाद की व्याख्या के अनुसार साम्यवाद का लक्षण यही है कि उत्पादन के साधन व्यक्ति विशेष की मिलकियत न होकर समाज की मिलकियत हो, तथापि हमको इस भूल में न पड़ना चाहिये कि यह प्राचीन ग्राम-संस्थाएँ वैज्ञानिक साम्यवाद के सिद्धान्त पर आश्रित थीं। उत्पादन के जो तरीक़े उस समय काम में आते थे, उनसे सम्पत्ति इतनी प्रचुरता में नहीं उत्पन्न हो सकती थी कि साम्यवाद के उद्देश्यो की पूर्ति हो सके। हमको यह ध्यान मे रखना चाहिए कि साम्यवाद का उद्देश्य समाज के धन को सब में बराबर-बराबर बाँटना नहीं है। यदि यही उद्देश्य हो, तो अत्यन्त निर्धन देशो में इस बँटवारे का फल यही होता कि कुछ लोग तो गरीब हो जाते; पर गरीबो की गरीबी दूर नहीं होगी। वैज्ञानिक साम्यवाद गरीबी को दूर करना चाहता है, न कि कुछ अमीरो से कुढ़कर उनको तबाह करना। इसलिए वैज्ञानिक

साम्यवाद की कल्पना भी मशीन-युग के पहले नहीं हो सकती थी। मशीन-युग तथा उसमे पैदा होने वाला वर्तमान पूँजीवाद ही वैज्ञानिक साम्यवाद का जन्मदाता है। मशीन के द्वारा जो औद्यागिक उन्नति हुई है, उसने यह प्रमाणित कर दिया है कि प्रचुरता के इस युग मे जब लोग इसलिए मुसीबत नही उठाते कि संसार मे भोजन तथा सुख की सामग्री की स्वल्पता है बल्कि इसलिए कि उत्पादन के साधनो के मालिक अपने स्वार्थ के लिये, न कि समाज के हित के लिए, वस्तुओ का उत्पादन करते हैं, साम्यवाद की प्रतिष्ठा करना संभव हो गया है। मशीनयुग के पहले संपत्ति की वृद्धि का कोई ऐसा बड़ा जरिया नहीं था और इसीलिए उस जमाने मे चाहे भूमि पर समाज का ही क्यों अधिकार न रहा हो, साम्यवाद द्वारा समाज की गरीबी नही दूर की जा सकती थी।

इसका ज़िक्र करना यों आवश्यक प्रतीत हुआ कि रूस के इतिहास मे हमको एक राजनैतिक दल का (Narodnik) उल्लेख मिलता है जिसकी विचार-पद्धति इसी प्रकार की थी। यह दल रूस मे ऐसी ग्राम-संस्थाओ को क़ायम करना चाहता था, जिनमें भूमि का स्वत्व व्यक्तियो के हाथ मे न होकर सारे समाज के हाथ में हो। इन लोगों का विचार था कि ऐसा करने से हम साम्यवाद की प्रतिष्ठा भी कर सकेंगे और मशीनयुग के दोषों से भी मुक्त रह सकेंगे। रूस के वैज्ञानिक साम्यवादियो को इनका घोर विरोध करना पड़ा था और वे इनके मुक़ाबले मे तभी सफल हो सके थे, जब बारंबार विफल होने के कारण लोगो को इनकी नीति पर से विश्वास उठ गया था। रूस के इतिहास से यह भी पता चलता है कि रूसी-क्रान्ति के समय Narodnik ने साम्यवादियों का विरोध किया था और क्रान्ति के दबाने मे श्रम-जीवियों के विरुद्ध पूंजीपतियों की सहायता की थी।

अपने देश में अभी ऐसा कोई दल पैदा नहीं हुआ है, पर जो लोग अतीत काल में स्वर्णयुग की तलाश करते हैं, वह इन्हीं ग्राम-संस्थाओं का आश्रय लेकर इसी प्रकार के साम्यवाद की कल्पना कर सकते हैं।

यह एक आश्चर्य की बात है कि अपने देश में जो लोग मशीन-युग के विरोधी हैं और जिनकी आँख भविष्य पर न होकर अतीत पर है, वह Narodniks की तरह कौंसिलों में जाने के भी सिद्धान्ततः विरोधी हैं। दोनों में विचार-साम्य होने से कार्य में भी समानता पाई जाती है। और इसी विचार के लोगों में से Narodnik के भाई निकल सकते हैं।

अपने देश में एक और वर्ग है, जो समाज की वर्तमान व्यवस्था को कायम रखना चाहता है, पर देखता है कि उस व्यवस्था से जो दोष उत्पन्न हुए हैं यदि वह दूर नहीं किये जावेंगे तो वर्तमान समाज का नाश हो जायगा; इसलिए यह वर्ग वर्तमान व्यवस्था में बिना किसी प्रकार का मौलिक परिवर्तन किये उसके दोषों को दूर करने की चेष्टा करता है। अधिकतर लोग इसी वर्ग के हैं। यह वास्तव में समाज सुधारक हैं। इन्हें साम्यवादी न कहना चाहिए पर यह लोग भी अपने को साम्यवादी कहने की हिम्मत दिखाते हैं। ये नाना प्रकार के सुधार की योजनाएँ उपस्थित करते हैं और वर्तमान समाज के संकट को टालने का प्रयत्न करते हैं। इस वर्ग में ऐसे बहुत से लोग शामिल हैं, जो सद्भाव से प्रेरित होकर गरीबी को दूर करने की चेष्टा करते हैं। हम उनके भावों का आदर करते हैं; पर इसका यह अर्थ नहीं है कि जिस नीति का वह अनुसरण करते हैं उसका हम भी समर्थन करें। सुधार की इस नीति से एक साम्यवादी का अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता। इस नीति का बराबर विरोध करना चाहिए; क्योंकि खुले विरोधियों

की अपेक्षा इस नीति के समर्थकों से वैज्ञानिक साम्यवाद को अधिक नुकसान पहुँचता है।

एक और भी वर्ग हो सकता है, जो साम्यवादियों की उन माँगों में से कुछ माँगों को स्वीकार कर ले, जो परिवर्तन की अवस्था को दृष्टि में रख कर तैयार की गई हैं और इसी नाते साम्यवादी होने का दावा पेश करे। इन मांगों मे कई ऐसी मांगें हैं, जो व्यक्तिगत सम्पत्ति का अन्त तो नहीं करतीं; किन्तु उनको मर्यादित अवश्य कर देती है। बड़े-बड़े टैक्स तथा वारिसों पर टैक्स ऐसे उपाय हैं जिनसे व्यक्तियों की सम्पत्ति का नियन्त्रण हो सकता है; पर इससे गरीबी का अन्त निश्चय ही नहीं होता। इस वर्ग की भूल यही है कि यह समझता है कि ये सब उपाय गरीबी तथा समाज की अन्य प्रचलित बुराइयों को दूर करने के लिए पर्याप्त हैं। इ[illegible] प्रतिकूल एक साम्यवादी ऐसी मांगो का समर्थन केवल इस[illegible] करता है कि वह जानता है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का लोप एक बारगी नही हो सकता।

मेरी छोटी बुद्धि मे यही आता है कि कांग्रेस धीरे-धीरे [illegible]ी विचार-पद्धति का समर्थन करने लगेगी। कांग्रेस से वैज्ञ[illegible]क साम्यवादियों को सचेत रहना चाहिये और उन्हे सुलह [illegible]र समझौते के नाम पर अपने आदर्श से नही गिरना चाहिये।

साम्यवाद के कितने मुख्य-मुख्य विकृत रूप है या हो सकते हैं, उनकी चर्चा थोड़े मे मैंने ऊपर की है। पाश्चात्य देशो मे भी ये सब रूप और प्रकार पाये जाते है।

वैज्ञानिक साम्यवाद न तो सुधारवाद है और न क[illegible] साम्यवाद। यह तर्क की कसौटी पर कसा जा सकता है [illegible]ह समाज की एक ऐसी नवीन आर्थिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करना

चाहता है, जिसमें उत्पादन के साधन तथा उत्पन्न वस्तुओं का वितरण और विनिमय समाज के हाथ में हो।

वर्तमान औद्योगिक पद्धति के युग के पहले वैज्ञानिक साम्यवाद की प्रतिष्ठा करना सर्वथा असंम्भव था। योरप की औद्योगिक क्रान्ति के फल-स्वरूप ही वैज्ञानिक साम्यवाद का जन्म हुआ है।

मशीन के युग में ही बड़े पैमाने पर उद्योग का होना संभव हो सका है और वस्तुओ की पैदावार असीमित मात्रा में बढ़ाई जा सकती है, पर आपस की स्पर्द्धा के कारण पूंजीपतियों में मुनाफे के लिये होड़-सी लग गई और माल खपत से कहीं ज्यादा तैयार होने लगा। इसीलिये समय-समय पर व्यापार में संकट की अवस्था उपस्थित होती रही है। आजकल जो विश्वव्यापी अर्थ-संकट है, इससे छुटकारा पाना कठिन-सा मालूम पड़ता है। लोगों [illegible] कष्ट बढ़ता ही जाता है। एक तरफ बेकारी बढ़ती जाती है; दूसरी ओर पूंजीपतियों की कीमत बढ़ाने के लिये पैदावार को कम करना पड़ता है। जिस प्रकार से आज का व्यवसाय पूंजी-[illegible] द्वारा संचालित होता है, उससे पैदावार की वृद्धि मे भारी [illegible]ट होती है। यह संकट की अवस्था तभी दूर हो सकती है, [illegible] एक सर्वथा विभिन्न सामाजिक व्यवस्था का आयोजन किया [illegible]। नये समाज में स्पर्द्धा को कोई स्थान नहीं रहेगा और एक नि[illegible]त आयोजना के अनुसार तथा समाज के सब सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये समाज के औद्योगिक जीवन का संचालन किया जावेगा। जब समाज के हित के लिए उद्योग-[illegible]गुय का संगठन होगा और उत्पादन के सारे साधन व्यक्तियों [illegible]कियत न होकर समाज की मिलकियत बन जावेंगे, तो अपने [illegible] के अनुसार समाज-जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये इतने परिमाण में वस्तुओं का उत्पादन करेगा कि

समाज के प्रत्येक सदस्य को पूरी स्वतन्त्रता के साथ अपनी शक्तियों के विकास का अवसर मिलेगा। समाज के हाथ मे जब उत्पन्न वस्तुओं का वितरण और विनिमय रहेगा, तो समाज में दरिद्रता और अशान्ति के स्थान में तुष्टि, पुष्टि और शान्ति आ विराजेगी। आज जो पैदावार को कम करने की कोशिश की जा रही है उसके कम करने का कोई कारण नहीं रह जायगा। पैदावार तेज रफ्तार से बढ़ेगी। देहातों की आज जो खराब हालत है, वह दूर हो जावेगी और अर्थ-शोषण की नीति का अन्त होगा।

PRINTED BY RAM PRASAD KHATTRI,
at the Vanijya Press, Nichibag, Benares City